प्रकाशक—श्री जवाहर विद्यापीठ
भीनासर (बीकानेर–राजस्थान)



प्रथम संस्करण—११००
द्वितीय संस्करण—११०० (सन् १९७९)
तृतीय संस्करण—११०० (सन् १९९१)



मूल्य—११)०० रु.



आवरण—अमित भारती, बीकानेर



मुद्रक—
जैन आर्ट प्रेस
समता भवन, बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

श्री जवाहर किरणावली की १७ वी किरण का द्वितीय संस्करण पाण्डव चरित (प्रथम भाग) उपस्थित करते हुए अति आनन्द हो रहा है। पूर्व में पाण्डव चरित के दोनों भाग बलुन्दा (मारवाड़) निवासी उदारहृदय दानवीर श्रीमान् सेठ छगनमल जी सा. मूथा के द्रव्य से प्रकाशित हुए हैं। इनके विक्रय की आय पुनः साहित्य के प्रकाशन में ही व्यय की जाती है। इस उदारता के लिए हम श्रीमान् सेठ छगनमल जी सा. के अति आभारी हैं। सच तो यह है कि श्री मूथा जी जैसे मित्रों के सहयोग से ही हम श्री जवाहर-साहित्य के प्रकाशन कार्य को इतना अग्रसर कर सके हैं।

श्री जवाहर–साहित्य की महिमा अनिर्वचनीय है। इसमें नीति एवं धर्म का सार–तत्त्व समाविष्ट है, जिसको ग्रहण करके कोई भी भव्यजन नैतिक एवं आध्यात्मिक सन्मार्ग पर अग्रसर होते हुए अपना जीवन सफल तथा सार्थक बना सकता है। यही कारण है कि जवाहर-किरणावलियों को इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है और उनके नए संस्करण प्रकाशित करने का शुभ अवसर उपस्थित हो रहा है।

पाण्डव–चरित के दोनो भाग पढने में अत्यन्त रोचक, शिक्षाप्रद और सारगर्भित हैं।

अब यह कुछ समय से अप्राप्य थी इसलिए पाठको की निरन्तर माग होने से इसके तृतीय सस्करण का प्रकाशन, धर्मनिष्ठ श्रावक श्रीमान् बालचन्दजी, ज्ञानमलजी, भूमरमल

जी, टीकमचन्दजी व गोरधनदासजी सेठिया भीनासर द्वारा अपने पुण्यश्लोका पिता श्री स्वर्गीय श्रीमान् हजारीमल जी सेठिया की पुण्य स्मृति मे हजारीमल सेठिया चेरिटेबल ट्रस्ट (करीमगंज) भीनासर द्वारा श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर को दी गई धनराशि से प्रकाशित किया जा रहा है। सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए आप पाचों भाइयों की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी। श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर इसके लिए आपका हृदय से आभार प्रकट करती है तथा आशा करती है कि भविष्य मे आपका सहयोग संस्था को इसी प्रकार मिलता रहेगा।

आशा है, पाठक इन किरणो का अध्ययन करके पूज्य श्री जी म. सा. की वाणी से लाभ उठाएगे और हमारे श्रम को सफल करेंगे।

निवेदक

बालचन्द सेठिया — अध्यक्ष, श्री जवाहर विद्यापीठ

सुमतिलाल बांठिया — मंत्री, श्री जवाहर विद्यापीठ



श्रीमद् जवाहराचार्य की ५० वी पुण्य तिथि के उपलक्ष्य में जवाहर किरणावलियो का सैट ... मे 25% श्री जवाहर विद्यापीठ की तरफ से 25% स्व० सेठ जेसराज जी बैद की पुण्य स्मृति में श्रीमान् [illegible]

दो शब्द

जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के व्याख्यान-साहित्य का कई दृष्टिकोणो से बड़ा महत्त्व है। उन्होने अपनी प्रतिभा के द्वारा जैन तत्त्व के स्वरूप को हृदयगम किया है, अतएव उनके प्रतिपादन में अपूर्वता है। जैन-सिद्धांतो को जीवन-व्यवहार्य रूप देने मे आपको जैसी सफलता मिली, वैसी शायद ही किसी ने पाई हो। मुख्यतया इसी कारण इस साहित्य की ओर मेरा आकर्षण है।

भारतीय-साहित्य मे रामायण और पाण्डव-चरित दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। एक मे भ्रातृप्रेम का ज्वलन्त आदर्श खड़ा किया गया है और यह बतलाया गया है कि भाई-भाई में स्नेह होने पर किस प्रकार सुख, शाति और समृद्धि बढ़ती है तो दूसरे पाण्डव-चरित मे भाइयो-भाइयो के पारस्परिक विरोध के कारण होने वाले भीषण परिणाम का चित्रण किया गया है। इस प्रकार ये दोनो चरित एक ही वस्तु के आपस मे विरोधी दो बाजू उपस्थित करते हैं और एक दूसरे के पूरक हैं। इन कथाओ से हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता हैं। इसी कारण भारतवर्ष मे रामायण और पाण्डव-चरित की कथाए बहुत प्रिय और प्रसिद्ध हैं। भारत के सभी मुख्य धर्मों के साहित्य मे इन कथाओ को स्थान मिला है।

आचार्य श्री ने यह प्रवचन देकर जैन-शासन की बहुमूल्य सेवा की है। पाठको से अनुरोध है कि वे इस साहित्य का मनन-चिन्तन करें और अपने जीवन के स्तर को ऊचा उठाए।

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

अनुक्रमणिका



—: पांडव चरित :—

१ : विषय—प्रवेश

शास्त्रो के चार अनुयोग हैं। उनमे चरितानुयोग का स्थान सामान्य जनता के लिहाज से महत्वपूर्ण है। सर्व-साधारण जनता के लिए चरितानुयोग जितना उपयोगी है, इतने दूसरे अनुयोग नही। चरितानुयोग के द्वारा गहन तत्त्व सरलता के साथ जनता के सामने रक्खा जा सकता है। उसे समझने मे विशेष कठिनाई नही होती। जो गहन बात दूसरी रीति से समझाना कठिन होता है वही बात अगर चरित द्वारा समझाई जाय तो सहज ही समझ मे आ जाती है। चरितानुयोग की शैली अन्य अनुयोगो की अपेक्षा सरस मधुर और आकर्षक होती है। यही कारण है कि जनता नीरस तत्त्व-विवेचना की अपेक्षा चरित-वर्णन को बडे चाव से सुनने को उत्कठित रहती है।

किसी बालक को रंग की डिबिया दिखाकर यह समझाया जाय कि इस रग मे हाथी है, तो इस कथन को बालक नही समझ सकेगा। लेकिन रग से अगर हाथी का चित्र बनाकर उसे दिखा दिया जाय तो वह समझ जाएगा। इसी प्रकार कथा की मूलभूत भावरूप वस्तु को कथा का रूप दे देने से वह बात जीवो के लिए सुगम हो जाती है। इस प्रकार कथा कहने का प्रधान उद्देश्य तो उस भावरूप वस्तु को समझाना है, मगर उसे समझाने के लिए कथा को स्थूल रूप देना पडता है, ठीक उसी प्रकार जैसे चित्र के खाके मे रग भरा जाता है।

यद्यपि भावरूप वस्तु मे कथानक का रग समयानुसार

भरा जाता है फिर भी वह रंग भावरूप वस्तु की वास्तविक मर्यादा को लांघ कर नहीं भरा जा सकता। मर्यादा का उल्लंघन करने से भाव-वस्तु विकृत हो जाती है। चित्र बनाने और रग भरने के लिए जो रेखाएं खीची गई हैं, उनसे बाहर रंग न चला जाय, इस बात की कुशल चित्रकार बड़ी सावधानी रखता है। इसी प्रकार कथाकार को भी ध्यान रखना चाहिए कि भाव-वस्तु मे समय के अनुकूल रंग भरते समय वह रग उस रेखा के बाहर न निकल जाए। तात्पर्य यह है कि पहले से खिची हुई रेखाओ मे समयानुकूल रग भर देना ही कथाकार का कर्त्तव्य है। अतएव कथा कहते समय मुझे भी यह ध्यान रखना है कि मेरे द्वारा पूर्व निर्दिष्ट रेखा का उल्लघन न हो पर समयानुकूल रग भरा जाए।



२ : ब्रह्मचर्य की महिमा

हस्तिनापुर नगर मनोहर जन-मन-रजनहार,
कौरव-कुल-नभ चन्द्र समान है शान्तनु नृप सुखकार।
गगा महारानी के अंगज हैं श्री गागेय कुमारजी,
सब मिल जय बोलो ब्रह्मव्रतधारी भीष्म की ॥१॥

आज ससार मे जिस ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकत है आधुनिक वैज्ञानिक भी जिसके बल के मुकाबिले दूसरा कोई बल नही मानते, जिसकी शक्ति कल्पना से अती और तर्क के अगोचर है, जिसका प्रभाव अद्भुत है, जिसक

चमत्कार अपूर्व है जिसकी महिमा अपरिमित है, जो ब्रह्मानन्द का दाता है, आध्यात्मिक तेज उत्पन्न करने वाला है, जीवन का सौन्दर्य है और जिसके बिना शारीरिक, मानसिक और वाचनिक शक्तिया सोई पडी रहती हैं; जो इस शरीर का जीवन है इस जीवन का प्राण है, प्राणो की आत्मा है, आत्मा का सर्वस्व है और सर्वस्व का सार है, उस ब्रह्मचर्य का वर्णन किन शब्दो में किया जाय ? वास्तव मे ब्रह्मचर्य की पूर्ण महिमा का गान नही किया जा सकता । शास्त्र मे कहा है—

देवदाणवगंधव्वा जक्ख-रक्खसकिन्नरा ।
बभयारिं नमसंति दुक्करं जं करंति ते ॥
—श्री उत्तराध्ययन ।

अर्थात्—देव, दानव, गधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर सभी प्रकार के देवता भी ब्रह्मचारी के सामने झुक जाते हैं ।

जब देवता भी ब्रह्मचारी पुरुष के चरणो पर लोटते है तो मनुष्यो का कहना ही क्या है ? ब्रह्मचर्य मे ऐसी अलौकिक शक्ति होती है कि समस्त प्रकृति उसकी दासी बन जाती है, समस्त शक्तिया उसके हाथ का खिलौना बन जाती हैं, सिद्धिया उसकी अनुचरी हो जाती हैं और ऋद्धिया उसके पीछे-पीछे दौडती फिरती हैं ।

जिस ब्रह्मचर्य की ऐसी महिमा है उसका लक्षण क्या है ? आज ब्रह्मचर्य का प्राय: सकीर्ण अर्थ किया जाता है । स्त्रीसंसर्ग न करना ही ब्रह्मचर्य है, यह तो एक सकीर्ण

परिभाषा है । ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है । जिसके सहारे यह विश्व टिका हुआ है, उस ब्रह्मचर्य का अर्थ इतना संकुचित नही हो सकता । वस्तुतः ब्रह्मचर्य का पालन स्त्री के साथ रहकर भी किया जा सकता है और ब्रह्मचर्य का विनाश स्त्री के अभाव में भी किया जा सकता है । इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक मर्यादा का, जिसे वाड भी कहते है— पालन न किया जाय । वल्कि इस कथन का आशय यह है कि ब्रह्मचर्य का अर्थ स्त्रीसंसर्ग के त्याग मे ही सीमित नहीं है वरन् उससे भी अधिक व्यापक है । ब्रह्मचर्य के लिए शास्त्र मे वाड आदि रूप जिस मर्यादा का वर्णन किया गया है, उसका पालन तो करना ही चाहिए । मगर ऐसा करना उचित नहीं है कि केवल वाड की रक्षा की जाय और खेत उजड जाने दिया जाय अर्थात् ब्रह्मचर्य की बाह्य मर्यादा का तो ख्याल रक्खा जाय और ब्रह्मचर्य नष्ट होने दिया जाए ! डिबिया हीरा की रक्षा करने के लिए है । हीरा की रक्षा के उद्देश्य से ही डिब्रिया की रक्षा की जाती है । डिबिया की रक्षा करने वाला और हीरा को गंवा देने वाला विवेकवान् नही कहला सकता । समय पड़ने पर डिबिया अलग कर दी जाती है लेकिन हीरे की तो सर्वदा रक्षा ही की जाती है । समय आ पड़ने पर गौण बात छोड़ी जा सकती है पर मुख्य का त्याग नही किया जा सकता ।

सती सीता घोर संकट मे पड़ गई थी । रावण जैसे प्रचंड पराक्रमशाली राजा ने उसे सतीत्व से विचलित करने के लिए कोई प्रयत्न न छोड़ा । लेकिन सीता ने अपने सती-

त्व का परित्याग नही किया । रावण के लाख प्रयत्न करने पर भी वह विचलित नही हुई ।

मैंने एक चित्र देखा था । उसमे राम, लक्ष्मण, सीता और रावण की बहिन सूर्पनखा के चित्र थे । सूर्पनखा अपने चरित्र से पतित होकर लक्ष्मण को श्रृंगारिक हाव-भाव दिखलाती हुई उन को भी पतित करने का प्रयत्न कर रही थी । उस वन में लक्ष्मण के लिए कौन-सी वाड थी ? जङ्गल मे एकान्त स्थान था । सामने सुन्दरी का रूप धारण किये सूर्पणखा खडी थी । वहा अकेला हीरा था, वाड़ रूपी डिबिया नही थी । फिर भी क्या लक्ष्मण तिल भर भी विचलित हुए थे ? जैसे हीरा की छोटी-सी कणी बडे-बडे कांचो को काट डालती हैं, उसी प्रकार लक्ष्मण ने अपने चरित्र की रक्षा की और जैसे वडे कांच हीरा की कणी का कुछ भी नहीं बिगाड सकते, इसी प्रकार सूर्पनखा के हाव-भाव लक्ष्मण के चरित का कुछ भी नही बिगाड सके । साराश यह है कि मर्यादा का पालन तो करना ही चाहिए, परन्तु मुख्यत: यह वात ध्यान में रखना चाहिए कि जिस हीरे की रक्षा के लिए मर्यादा का पालन किया जाता है, वह हीरा ही कहीं नष्ट न हो जाए ।

आज भारतवर्ष में भी ब्रह्मचर्य संकट मे पडा हुआ है । स्वार्थी लोगो ने भांति-भांति की दवाए खोज कर और सततिनियमन के कृत्रिम उपायो का आविष्कार करके ब्रह्मचर्य पर भीषण प्रहार किया है । आज ब्रह्मचर्य की मर्यादा किस प्रकार नष्ट की जा रही है, यह वात प्रत्येक बुद्धिमान् जानता है । ऐसे समय मे भीष्म जैसे ब्रह्मचारी की जय

बोलने की शक्ति किस में है ? भीष्म की जय बोलने का वास्तविक अधिकारी वही है जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो या कम से कम देशविरत ब्रह्मचारी हो । जिसके समीप ब्रह्मचर्य का कोई मूल्य नही है वह भीष्म की जय बोलने का अधिकारी कैसे हो सकता है ?

भीष्म अखण्ड, नैष्ठिक या पूर्ण ब्रह्मचारी थे । भारत के प्राचीन महापुरुषों में उनका स्थान बहुत ऊंचा है । मगर जिस देश मे भीष्म सरीखे महान् ब्रह्मचारी हुए हैं, उस देश की आज क्या दशा है ? उस देश का वातावरण कितना गंदला हो रहा है ! लोग किस प्रकार कुमार्ग पर चल रहे हैं ? भीष्म की सन्तान होने का गर्व करने वाले आज किस भीषण विनाश--पथ पर अग्रसर होते जा रहे हैं ? हे भारत ! तेरे मस्तक पर बहुत बडा बोझ है । तुझे संसार को मार्ग दिखलाना है । अगर तू ही सन्मार्ग पर नही चलेगा और अंधों की तरह भटक जायगा तो ससार को सन्मार्ग कौन सुझाएगा ? सावधान होकर अपने पूर्वजो के उज्ज्वल चरित को देख । अपने 'पितामह' का स्मरण कर ! संभल और ससार को संभाल !

इस युग में भीष्म सरीखे महापुरुषों के जीवनचरित से प्रेरणा पाने की बहुत आवश्यकता है । इसलिए मैं ब्रह्मचारी भीष्म की कथा कहना चाहता हू ।



३. शान्तनु का विवाह

हस्तिनापुर नामक एक नगर था । यो तो हस्तिनापुर अभी मेरठ के पास है, पर कहा जाता है कि प्राचीन हस्तिपुर वहां था, जहा आज दिल्ली नगर बसा हुआ है । मगर धर्मकथा को इतिहास की दृष्टि से देखने की आवश्यकता नही है । धर्मकथा इतिहास प्रकट करने के लिए नही, धर्म को प्रकाशित करने के लिए होती है । अतएव यहा ऐतिहासिक गवेषणा में न पड़कर तात्त्विक बातो पर ही ध्यान दिया जायगा । धर्मकथा आचरण बनाने का नक्शा है । हम धर्मकथा द्वारा जनता के जीवन को उन्नत बनाना चाहते हैं । अतएव इतिहास सुनने की आशा न रखते हुए धर्मकथा सुनने की इच्छा से ही आप मेरा वक्तव्य सुनें ।

कहा जाता है कि भगवान् ऋषभदेव के सौ पुत्रो में से एक का नाम कुरु था । उन कुरु के वशज ही कौरव कहलाए । कही-कही यह उल्लेख मिलता है कि भगवान् ऋषभदेव के पौत्र (बाहुबली के पुत्र) राजा सोमभद्र और श्रेयांस के वश मे कुरु राजा हुए और उनकी सन्तान-परम्परा कौरव कहलाई । कुरु वश मे बडे-बडे प्रतापी पुरुपो ने जन्म लिया है । भगवान् शातिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ इसी वंश की विमल विभूतिया हैं । सनत्कुमार चक्रवर्ती, महापद्म चक्रवर्ती तथा अनेक इतिहास-पुराण-प्रसिद्ध राजाओ और महर्षियो ने कुरुवश को देदीप्यमान किया है । इस प्रतापशाली वंश के सैकड़ो राजा धर्मपरायण हुए और उनमे से अनेकों ने मुक्ति प्राप्त की है । कहा भी है—

शत्रपुत्र्यामभुन्नाभि-सूनोः सूनु. कुरुर्नृप· ।
कुरुक्षेत्रमिति ख्यातं राष्ट्रमेतत्तदाख्यया ॥

कुरोः पुत्रोऽभवद्धस्ती तदुपज्ञमिदं पुरम् ।
हस्तिनापुरमित्याहु रनेकाश्चर्यसेवितम् ॥

अर्थात्—भगवान् ऋषभदेव के सौ पुत्रों में से एक का नाम कुरु था । कुरु को जिस प्रदेश का राज्य दिया गया था, वह प्रदेश कुरुक्षेत्र कहलाया । कुरु राजा का पुत्र हस्ती हुआ । इस राजा हस्ती के नाम पर हस्तिनापुर नगर कहलाया । हस्तिनापुर मे अनेक आश्चर्य प्रकट हुए ।

हस्ती राजा के वश मे एक अत्यन्त पराक्रमी और चन्द्रमा की भांति शाति देने वाले शान्तनु नामक राजा हुए । शान्तनु की गंगा नाम की महारानी से ही भीष्म का जन्म हुआ था ।

भीष्म महारानी गंगा के पुत्र थे । इसी कारण उन्हें गागेय भी कहते हैं । गगा के साथ शान्तनु का विवाह किस प्रकार हुआ था, यह आगे कहा जायगा । यहां इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि दूसरे ग्रन्थो मे शान्तनु के विवाह का आलकारिक वर्णन किया गया है, लेकिन उस आलकारिक वर्णन का विकृत अर्थ किया जाता है । इन सब बातो पर विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाय तो काफी समय लग सकता है । वह वर्णन बहुत विस्तृत भी होगा । अतएव उसे छोडकर सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त है कि ग्रथो के आलंकारिक वर्णन का विकृत अर्थ करने से कथा मे अन्तर जान पड़ता है । अगर उस विकृति को अलग कर दिया जाय तो कथा की विषमता हट जाएगी और मूल वस्तु एक-सी प्रतीत होने लगेगी । वास्तविक बात यह है कि जह्नु नामक एक राजा थे । शान्तनु की रानी गगा इन्हीं राजा

जन्हु की पुत्री थी। इसलिए गंगा का दूसरा नाम जाह्नवी भी पडा, जैसे जनक की पुत्री होने के कारण सीता का दूसरा नाम जानकी था। इसी गगा या जाह्नवी के साथ राजा शान्तनु का विवाह हुआ था।

राजा शान्तनु का जन्म श्रेष्ठ कुल मे हुआ था। कुल क्रम से उन्हें अच्छे सस्कार प्राप्त हुए थे। उनमे अनेक सद्गुण थे। लेकिन जैसे चन्द्रमा मे भी कलक होता है उसी प्रकार शान्तनु मे भी एक मृगया (शिकार) का दुर्व्यसन था।

शिकार खेलना और निरपराध मूक प्राणियो का घात करना बुरा है। कोई भी विवेकशील पुरुष शिकार जैसे कार्य का समर्थन नही कर सकता। लेकिन ज्ञानी जन प्रत्येक बात में समभाव रखते हैं। उनका कथन है कि आस्रव भी संवर के रूप मे पलट सकता है और संवर के कार्य से भी आस्रव हो सकता है। शास्त्र मे कहा है:—

जे आसवा ते परिसवा,
जे परिसवा ते आसवा।

—श्री आचाराग सूत्र, प्र० श्रु०।

उदाहरण के लिए सयति राजा के वृत्तान्त को देखिए। वह मृगया करने गया था और उसने मृग पर वाण भी चलाया था। मगर उस मृग के निमित्त से ही वह गर्दभिल्ल (गर्भमाली) मुनि के पास जा पहुंचा। अतएव किस निमित्त से क्या होगा, यह नही कहा जा सकता। यही कारण है कि ज्ञानी जन प्रत्येक वात मे समभाव रखते हैं। ऐसी अचिन्तनीय वातो को दृष्टिगोचर रखकर ही कहा गया है—

न जाने संसारे किममृतमयं किं विषमयम् ?

अर्थात्—कौन जाने, संसार में क्या अमृतमय है और क्या विषमय है ?

संयति राजा मृगया के लिए गया था। वहीं मुनि के साथ उसकी भेंट हो गई। यह क्या बुरा हुआ ? यों देखा जाय तो मृगया करना बुरा ही है, मगर मृगया के कारण मुनि से जो भेंट हो गई, उस भेंट को कौन बुरा कहेगा ? इसलिए ज्ञानी जन परिणाम की ओर देखते हैं और प्रत्येक कार्य मे समभाव धारण करते है।

वनक्रीडा को जाते राय ने,
मृग—दम्पति को पाय।
मृग के पीछे छोड़ा अश्व को,
दया न मन के माय।
घोर जगल में पहुचा राजा,
मृग की छिप गई काय।

सब मिल जय बोलो गंगानन्दन श्री भीष्म की !

राजा शान्तनु को मृगया का बड़ा शौक था। एक दिन वह महावेगवान् अश्व पर सवार होकर अपने साथियों के साथ मृगया के लिए वन की ओर चल पड़ा।

यद्यपि मृगया हिंसा—कार्य है, तथापि देखना चाहिए कि इसका क्या परिणाम हुआ ? किसी बात की बिना सोचे समझे आलोचना करना उचित नहीं है। कदाचित् शान्तनु की बात कथानक की कही जा सकती है परन्तु सयति राजा की बात तो आगम मे भी आई है। शास्त्र में सयति राजा का वर्णन करते हुए कहा है—

हयाणीए गयाणीए रहाणीए तहेव य ।
पायताणीए महया सव्वओ परिवारिए ॥२॥
मीए छुहित्ता हयगओ कपिलुज्जाणकेसरे ।
भीए सन्ते मिए तत्थ वहेइ रसमुच्छिए ॥३॥उ०अ० १८

इस प्रकार शास्त्र मे कहा है कि संयति राजा चतुरंगिनी सेना लेकर मृगया के लिए गया था । कहा जा सकता है कि धर्मकथा मे मृगया के वर्णन की क्या आवश्यकता है? ऐसा कहने वाले को यही उत्तर दिया जा सकता है कि प्रत्येक बात पर समभाव से विचार करना चाहिए और प्रत्येक वस्तु के यथायोग्य स्वरूप को समझने का प्रयत्न करना चाहिए ।

आज जैनधर्म का अनुयायी कोई राजा नहीं रहा । इसके अन्याय कारणों के साथ एक प्रधान कारण जैनो की संकुचित मनोवृत्ति भी है । आजकल का जैन समाज सीमातीत असहनशील बन गया है वह शास्त्रो के विषय में अपनी ही दृष्टि को सर्वोपरि मानने लगा है । जैनशास्त्र को यह मान्य नही है कि प्रत्येक व्यक्ति सैद्धातिक बातो को अपनी दृष्टि से देखे या माने । जैनशास्त्र का कथन है कि हिसा के स्थान पर हिसा और अहिसा के स्थान पर अहिसा समझो । यह हठ-बुद्धि छोड दो कि जो हम कहते हैं वही होना चाहिए दूसरा क्यो होता है ? ससार मे स्वर्ग भी है, नरक भी है । पाप भी है, पुण्य भी है । आप अपनी हठ-बुद्धि से इनमे से किसी को नही मिटा सकते । शास्त्र पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म सभी का वर्णन करता है । आप स्वयं अधिक से अधिक पाप से बचें, लेकिन सहसा किसी बात की

आलोचना न करने बैठें। समभाव रखकर प्रत्येक बात के स्वरूप और परिणाम पर विचार करें।

राजा शान्तनु शिकार खेलने के लिए वन को गया। वह सोचता होगा कि लोग शिकार की निन्दा करते हैं, लेकिन शिकार करना मेरे लिए आनन्द की बात है! इससे मन को प्रसन्नता होती है, बल और साहस की वृद्धि होती है। राजा मानो यही सोच रहा था कि इतने ही में उसकी दृष्टि एक मृग-युगल पर पड़ी।

कवियो का कथन है कि नर-जाति की अपेक्षा नारी-जाति मे अधिक सौन्दर्य होता है। इसी कारण मृग की अपेक्षा मृगी अधिक सुन्दर समझी जाती है। यों तो स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषो मे रूप की कमी नही होती लेकिन पुरुष मोहवश मानने लगते है कि रूप स्त्रियो मे ही है! मगर विचारणीय यह है कि जो पुरुष स्त्रियो की अपेक्षा श्रेष्ठ है वह स्त्रियो से कम रूपवान् कैसे हो सकता है? जो हो, शायद सौन्दर्य की हीनता या अधिकता की कोई निश्चित तराजू नही है। जिसकी जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही सृष्टि उसे दिखाई देने लगती है।

मृग का जोडा देखकर राजा सोचने लगा—'मैं' नगर का रहने वाला वन मे भटक रहा हू, लेकिन वन में रहने वाले वन मे ही रहते हैं। ऐसी दशा में इन वनचरो के प्रति नागरिक का क्या कर्त्तव्य है? फिर मैं साधारण नागरिक ही नहीं राजा हू, जिस पर प्रजा की रक्षा का भार है।'

राजा को यह विचार आया मगर शिकार के आवेश मे वह क्षण भर से ज्यादा नही टिका। दूसरी ओर मृग के

यह महल होगा ? महल सूना नही जान पड़ता। इसमें कोई रहता मालूम होता है। इस घोर वन मे महल का दिखाई देना मेरे छोटे-से त्याग का ही फल है। अगर मैंने घोड़े का त्याग न किया होता तो यह महल देखने को कैसे मिलता? घोडा छोड़े बिना इस टीले पर चढ ही कैसे सकता था ?

वास्तव मे घोड़ा भी एक प्रकार का बन्धन है। कल्पना कीजिए, एक आदमी घोडे को पकडकर उस पर सवार होकर चला। आगे उसके मित्र का घर आया। मित्र घोड़े-सवार को बुला रहा है और सवार को भी अपने मित्र के घर जाना पसन्द है। ऐसी स्थिति मे घोड़े की सवारी त्याग कर ही वह मित्र के घर जा सकता है। जब तक वह घोडे पर सवार रहेगा, घर मे प्रवेश नही कर सकेगा। अब देखना चाहिए कि उसने घोड़े को पकडा है या घोड़े ने उसे पकड रक्खा है ?

राजा सोचता है—इस महल का नजर आना त्याग का ही फल है। साथ ही मृग का भी उपकार हुआ कि वह मुझे इस ओर ले आया। इस प्रकार मन ही मन अनेक बातें सोचता-विचारता राजा शान्तनु उस महल के समीप पहुंचा। उसे स्त्रियो का एक झुंड मिला। सब स्त्रियां 'महाराज ! पधारिए, स्वागत है' कहकर राजा का अभि-वादन करने लगी। उन्होने कहा—'हम आपकी प्रतीक्षा मे ही खड़ी थी। अच्छा हुआ, आप पधार गए।'

राजा भौंचक्का रह गया ? सोचने लगा—इनसे मेरी कोई जान-पहिचान मालूम नही होती। इधर मैं पहले कभी आया भी नही। मेरे आगमन की पहले कोई सूचना भी

राजा बड़े असमंजस में पड गया । वह सोचने लगा—आज तक तो ऐसा कभी हुआ नही था । यह पहला ही अवसर है कि शिकार धोखा देकर चम्पत हो गया और मैं देखता ही रह गया !

राजा गया तो था शिकार खेलने, लेकिन देखना चाहिए कि वहां अकस्मात् क्या घटना घटती है। ऐसी बातों को दृष्टि मे रखकर ही कहा गया है कि आस्रव के स्थान पर भी सवर हो सकता है और संवर के स्थान पर भी आस्रव हो सकता है, लेकिन ज्ञानी पुरुष को तो समभाव ही रखना चाहिए । राजा सयति को शिकार खेलने के लिए जाने पर मुनि का समागम हुआ था; परन्तु शान्तनु के विषय मे दूसरी ही घटना घटती है ।

अश्व से नीचे उतरे राजा भटके जंगल माय ।
सुन्दर रगमहल इक देखा मन को अति लोभाय ॥
राजा को ले चली दासियां गगा पासे आय ।
सब मिल जय बोलो ब्रह्मव्रत धारी भीष्म की ॥

शिकार का कार्य आस्रव का अर्थात् कर्मबध का है। लेकिन कौन जानता है कि इस निमित्त से भी कभी कोई अच्छा काम हो सकता है ? इसी कारण वस्तु पर अनेकान्त दृष्टि से विचार किया जाता है ।

राजा शान्तनु घोड़े से उतर कर मृग को खोजने के लिए एक टीले पर चढा । उसी समय उसे एक सुन्दर महल दिखाई दिया ! महल को देखकर राजा सोचने लगा—इस वन में और ऐसा सुन्दर महल ? यह कहां से आया ? किसका

मुख से अपना वृत्तान्त कैसे सुनाऊं ?' यह सोचकर गगा ने अपनी धाय की ओर संकेत किया ।

सकेत से भी बात समभी जाती है । स्वामी–सेवक तथा गुरु-शिष्य मे इगित–चेष्टा से ही बात समभ ली जाती है । बल्कि श्रेष्ठ शिष्य वही है जो इगित से ही गुरु का अभिप्राय समभ जाए । गगा के सकेत को उसकी धाय–माता समभ गई ।

पूछा राय ने कहा धाय ने गगाचरित उदार ।
गिरी वैताढ्ये रत्नपुरी का जह्नुराय यह गुणधार ॥
उनकी पुत्री है यह राजा इसका यह निरधार ।
सब मिल जय बोलो ब्रह्मव्रतधारी भीष्म की ॥
विद्याकला मे पूरी प्रवीणा सरस्वती सम जान ।
स्वतन्त्रता की है उपासिका नही स्वच्छदी बान ॥
स्वकृत व्रत के पालन मे यह करे जान कुर्बान ।
सब .... भीष्म की ॥
ब्याह योग्य जब हुई बाल तब पूछा पिता ने आय ।
करे ब्याह तब योग्य पति से जिससे सब सुख पाय ।
परतन्त्रता मे सुनो पिताजी सुख का नही उपाय ।
सब...... . . .. भीष्म की ॥
एक प्रतिज्ञा करी है मैंने जो है अति सुखरूप ।
जो मेरी आज्ञा मे रहेगा वह नर मम अनुरूप ॥
ब्रह्मचर्य को पाल अन्यथा बन जाऊगी अनूप ।
सब .... भीष्म की ॥
सुनके बात कन्या की राय ने खोज करी भरपूर ।
सुनके प्रतिज्ञा राजकुवर सब रह जाते हैं दूर ॥

इन्हे नही थी । फिर भी ये मेरी प्रतीक्षा मे खडी हैं ! यह कैसा आश्चर्य है ।

राजा ने अपने आपको संभाल कर कहा—आप मेरी शुभचिंतिका हैं, इसीलिए ऐसा कहती हैं ।

स्त्रियो मे से एक ने कहा—आप जैसो के लिए ससार में सभी सज्जन हैं । दुर्जन कौन हो सकता है ?

आखिर वे स्त्रियां राजा को साथ लेकर महल मे दाखिल हुई । महल मे राजा जह्नु की कुमारी गगा बैठी थी । सुन्दरी गगा को देख कर राजा को बहुत विस्मय हुआ । उस समय तक राजा अविवाहित था ।

प्राचीन काल मे आज की भाति बाल विवाह नही होते थे । विवाह उस समय माता-पिता की हवस पूरी करने का साधन नही था । जब सोते हुए नव अंग जागृत हो जाते थे, तभी उस समय विवाह होता था ।

महाराज शान्तनु गंगाकुमारी की असाधारण रूपराशि देखकर चकित रह गया । वह ज्यो ही गगा की ओर अग्रसर हुआ कि गंगा ने उठकर राजा का स्वागत किया । यथोचित आसन दिया । राजा आसन पर बैठ गया । तदनन्तर शान्तनु ने किंचित् शान्त-चित्त होकर गंगा से कहा—'आपका रूप और स्वभाव बहुत ही आनन्ददायक है । लेकिन मैं समझ नही सका कि आप कौन हैं ? किस कारण इस बीहड वन मे वास कर रही हैं ? कोई हानि न हो तो बतलाइए कि आपके माता-पिता कौन है ?'

राजा का प्रश्न सुनकर गगा सोचने लगी—'मैं अपने

धीनता स्वीकार नही करूंगी । चाहे कितने ही कष्टों का सामना क्यों न करना पडे, मगर मैं अपनी स्वतन्त्रता का परित्याग नही करूंगी । मैं अपनी अन्य बहिनो को भी स्वतन्त्र बनाने का प्रयत्न करूगी ।

जब कुमारी गंगा की उम्र विवाह के योग्य हो गई तो महाराज जह्नु ने एक दिन इनसे कहा--पुत्री ! कन्या जीवन भर पिता के घर नही रह सकती । उसे विवाहित होकर पति के घर जाना पडता है। तुम्हे भी ऐसा करना होगा । लेकिन मे जानना चाहता हू कि तुम कैसा पति चाहती हो ?

पिता का प्रश्न सुनकर पहले तो गंगा सकुचाई । फिर सोचा—इस तरह संकोच करने से कैसे काम चलेगा ? मन का भाव प्रकट न करने से अनिष्ट होने की ही संभावना है। इस प्रकार विचार कर गगा कुमारी ने पिता से कहा—पिताजी ! आपने ही मुझे शिक्षा दी है और मैं यह बात भली भाति समझ गई हू कि प्रत्येक आत्मा को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है । फिर यह प्रश्न करके क्या आप मुझे पराधीनता की बेडी पहनाना चाहते हैं ? जब आपने प्रश्न किया ही है तो उसका उत्तर मुझे देना पडेगा । मेरा उत्तर यह है कि प्रथम तो ऐसा पति होना चाहिए जिसे पाकर मैं कभी विधवा ही न बन सकूं । अगर ऐसा पति न मिले तो मैं ऐसे पुरुष के साथ विवाह करना चाहती हू जो मेरी आज्ञा का पालन करे मेरे कथन का उल्लघन न करे और कदाचित् उल्लघन करे, तो उसका और मेरा संबध-विच्छेद हो जाय ।

गंगा का यह कथन सुनकर महाराज ने सोचा—गंगा

चिंतित रहने लगे पिता जब मिला न कोई नूर।
सब·········· ················· ························भीष्म की ॥

पिता दु:ख का कारण मैं हू छोड़ यहा का वास।
जगल मे जाकर के रहू तो न हो पिता को त्रास ॥

वनदेवी सम वन मे रहकर पाले प्रतिज्ञा खास।
सब·················· ···· ···· ·········· ·····भीष्म की ॥

मेरी आज्ञा को जो माने वह मेरा भरतार।
इस निश्चय को सुनकर कोई वर नही हुआ तैयार ॥

इस कारण यह वन मे रहकर पाले प्रतिज्ञा सार।
सव मिल················· ·· · ·· · ·· ·····भीष्म की ॥

मत्र मुग्ध सा रूपमुग्ध हो बोला यो राजान—
आज्ञाकित मैं सदा रहूगा सुन लो मेरी बान ॥

पति रूप से मुझे स्वीकारो छोड़ो अपनी तान।
सब ······ · ········ · · · · ··· ·····भीष्म की ॥

धाय ने राजा की ओर उन्मुख होकर कहा वैताढ्य पर्वत पर रत्नपुर नामक एक नगर है। वहां के राजा का नाम जह्नु है। आपके सामने विराजमान कुमारी गंगा उन्ही राजा जह्नु की कन्या है।

महाराज जह्नु ने पुत्र और पुत्री मे भेद न करके इन्हे यथोचित सभी कलाए सिखलाई हैं। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होने विचार किया—स्वतन्त्रता में ही आत्मा को सुख प्राप्त हो सकता है और कहा जाता है कि स्त्रियो का जीवन पराधीन है। ऐसी दशा मे स्त्री होने के कारण ही मुझे क्या स्वाधीनता के सुख से वचित रहना पड़ेगा ? नही, मैं परा-

गंगा को अपने पिता की चिन्ता और व्याकुलता का पता लगा। यद्यपि उसे अपने विवाह की परवाह नही थी, वह आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने के लिए तैयार थी और इतनी तैयारी होने पर ही उसने यह प्रतिज्ञा की थी, मगर अपने कारण पिता को चिन्तित देखकर उसे बहुत खेद हुआ। किसी उपाय से उसने पिता की चिन्ता कम करने की बात सोची। एक दिन अवसर पाकर गगा ने महाराज जह्नु से कहा—

गंगा—पिताजी ! मेरी इच्छा अब वनवास करने की है। आपकी आज्ञा हो तो मैं वन मे ही रहना चाहती हूं।

जह्नु राजा गंगा की ओर से अकुलाए हुए थे। फिर भी उन्होंने ऊपर के मन मे कहा—'जगल मे भीलनी और किराती रहती हैं। तू राजकुमारी है। जगल मे कैसे रहेगी ? तुम राजमहल मे रही हो और राजमहल मे ही रहने योग्य हो। जगल मे रहना तुमसे नही बनेगा। क्या कोई राजा तुम्हारे योग्य नही है ? या तुम किसी राजा के योग्य नही हो जिससे वनवास करना चाहती हो' ?

गंगा—मैं किसी को दोष नही देना चाहती। मैं अपने ही लिए कहती हू कि मैं स्वय किसी राजा के योग्य नहीं हू। पुरुष, स्त्रियों पर शासन करते आ रहे हैं, अब भी कर रहे हैं। सभी स्त्रियां पुरुषो के अधीन हैं। सभी पुरुष स्त्रियो को अपने अधीन किये बैठे हैं। पुरुष-समाज में इतनी उदारता नही है कि वह एक भी स्त्री को स्वाधीन रहने दे। वह एक भी स्त्री के शासन को सहन नही कर सकता। अतएव जब कोई भी पुरुष मेरी शर्त स्वीकार करने को

इतनी सुन्दरी है कि इसकी समता करने वाली दूसरी कन्या दुर्लभ है। अतएव कोई राजकुमार इसकी आज्ञा में रहने को अवश्य तैयार हो जायगा। यह सोचकर महाराज ने कहा— अगर तुम्हारी इच्छा के अनुकूल पुरुष मिल जाय तब तो विवाह करने मे आनाकानी नही करोगी ?

इस प्रश्न के उत्तर मे गंगा चुप रही। महाराज ने सोचा-'मौन सम्मतिलक्षणम्।' अर्थात् मौन रह जाना सहमत होने का लक्षण है।

इस प्रकार निश्चित करके महाराज जह्नु ने अनेक राजकुमारों को आमंत्रित किया। राजकुमार आये और गंगा को देखकर मुग्ध भी हुए। मगर गंगा की प्रतिज्ञा किसी ने स्वीकार नही की। जो आया उसी ने कहा—'हम अपने पुरुषत्व की उपेक्षा करके राजकुमारी के अधीन किस प्रकार रह सकते हैं ? हम उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकते। और आज्ञा पालन न करने की अवस्था में वह हमे त्याग कर चली जाए, इससे अच्छा तो यही है कि हम पहले ही यह शर्त स्वीकार न करे।' इस तरह कह कर सभी राजकुमार लौट गए।

किसी राजकुमार को गगा के साथ विवाह करने को तैयार होते न देखकर राजा को बहुत चिन्ता हुई। वह मन ही मन सोचने लगे—'गगा की प्रतिज्ञा पूरी नही हो रही और वह सयानी हो गई। युवती गंगा को घर में रखना निन्दा का कारण है।' इस प्रकार राजा सदैव चिन्ता मे डूबे रहते।

इन्हे न किसी प्रकार की चिन्ता ही है और न कोई मन-स्ताप ही है। यह प्रसन्नता और सतोष के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं।

एक वार महाराज जह्नु यहां पधारे थे। वह कहते थे कि एक निमित्तज्ञानी ने यह बतलाया है कि हस्तिनापुर के राजा शान्तनु मृग का पीछा करते हुए इस वन में आएगे। और वे गगा की प्रतिज्ञा मान कर उसके साथ विवाह करेंगे। हम सब तभी से आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं। अब सौभाग्य से आप पधारे हैं। जो आपको उचित लगे, वह कीजिए।

शान्तनु बड़ा राजा था। उसे एक से एक बढ़कर सुन्दरी राजकन्याए प्राप्त हो सकती थी। बड़े से बड़े राजा की कुमारी भी शान्तनु को पाकर अपने को धन्य मानती। ऐसी स्थिति मे क्या वह स्त्री के अधीन रहने की प्रतीज्ञा कर सकता था? लेकिन शान्तनु ने गगा में कौन जाने क्या देखा? उसने न मालूम क्या सोचा? और वह गंगा की प्रतिज्ञा अस्वीकार न कर सका।

गगा मे ब्रह्मचर्य का असाधारण प्रताप था। प्रथम तो वह जन्मजात सुन्दरी थी ही, फिर ब्रह्मचर्य ने उसके सौन्दर्य में एक विचित्र प्रकार की तेजस्विता उत्पन्न कर दी थी। इस तेजस्विता के सयोग से गगा का सौन्दर्य अनुपम हो गया था जो राजमहल के विलासपूर्ण वातावरण मे कभी संभव नही है।

आगे चलकर भीष्म इतने बलवान् और ब्रह्मचारी हो सके, इसका कारण भी उनकी माता गंगा का ब्रह्मचर्य

तैयार नहीं है तो मैं अपनी आत्मा को ही क्यों न अपने वश में करूं ? मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसमे किसी प्रकार के अहंकार की प्रेरणा नहीं है। वह आवेश से प्रेरित होकर भी नही की गई है। मैं नारी-जाति में जागृति उत्पन्न करना चाहती हूं। मैं नारियों को उनके स्वत्व का बोध कराना चाहती हूं। मेरी प्रतिज्ञा के पीछे मेरा दृढ संकल्प है, उत्सर्ग के लिए पूर्ण उद्यतता है। इस प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए मे सभी कुछ त्यागने को तैयार हू। संसार के आमोद-प्रमोद और भोग-विलास मुझे विचलित नहीं कर सकते। मैंने पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की तैयारी करके ही यह प्रतिज्ञा की है। मैं हंसती हुई समस्त आपदाओं का सामना करूंगी और पुरुष जाति के पुरुषार्थ पर नारी जाति की प्रबल संकल्पशक्ति की मोहर लगाऊंगी।

पिताजी ! आप मेरे विषय मे व्यर्थ चिन्तित होते हैं। अतीत काल की अनेकानेक ब्रह्मचारिणी सतियो का आदर्श जिसके सामने प्रस्तुत हो, उसके लिए चिन्ता की बात ही क्या है ?

गंगा के उत्तर मे न उद्दंडता है,न आवेश है, न चंचलता है, वरन् गभीरता, दीर्घदृष्टि, सकल्प की अटलता और त्याग की प्रबल भावना है। यह देखकर राजा जह्नु को आश्वासन मिला। उन्होने गंगा के वन-वास के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उन्होने उसके लिए जो महल बनवा दिया था, वही यह महल है, जिसमे आप इस समय विराजमान हैं। और यही वह राजकुमारी गंगा हैं, जो आपके सामने बैठी हैं। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वर न मिलने के कारण

किन्तु अपना मतलब निकालने के लिए की गई हो। महाराज रूप में तो मुग्ध नही हो गए है ?

मेरे मोह मे पड़कर राजा कहते हो यह बात,
यदि न मानो मम आज्ञा तो छोड़ूंगी मैं साथ।
अपने प्रण को पूर्ण जानकर लग्न किया साक्षात्॥
सब..भीष्म की।

नैमित्तिक से जान बात सब आये जन्हु महाराज,
सत्कारित हो शान्तनु राजा गंगा लाये राज।
बड़ी उमंग से किया महोत्सव तब रानी के काज॥
सब..भीष्म की।

गगा दूरदर्शिनी थी। उसने राजा की प्रतिज्ञा सुनकर उनसे कहा—'महाराज. मेरी धृष्टता को क्षमा करें। विवाह थोड़ी देर का सौदा नही है। वह जीवन भर का पवित्र गठबंधन है। विवाह के बाद पति-पत्नी पर एक गंभीर उत्तरदायित्व आ पड़ता है। अतएव विवाह से पहले ही सब बातें स्पष्ट हो जानी चाहिए। मैं सोचती हू कि आप कही मेरे रूप पर मोहित होकर ही तो यह प्रतिज्ञा नही कर रहे हैं ? अन्यथा आप जैसे प्रतापशाली नरेश क्यो पत्नी के वश मे रहना स्वीकार कर रहे हैं ? अनेक सुन्दरिया आपकी रानी बनने की अभिलाषा रखती होगी। फिर भी आप पत्नी के अधीन रहने की प्रतिज्ञा कर रहे हैं, यही मेरी शंका का कारण है। मैं चाहती हू, आप अपनी प्रतिज्ञा के विषय में फिर एक बार विचार कर लें। यह आप निश्चय समझ ले कि जिस दिन आपकी यह प्रतिज्ञा भंग होगी, उसी दिन मैं राजमहल त्याग कर चल दूंगी।'

था । माता के ब्रह्मचर्य से भी बालक बलवान् होता है । हनुमानजी की माता अंजना ने जो ब्रह्मचर्य पाला था, उसके फल-स्वरूप ही हनुमान जैसे बलवान् पुत्र का जन्म हुआ था । सभी लोग अपनी संतति का बलवान् होना पसन्द करते हैं, दुर्बल और निर्वीर्य संतान कोई नही चाहता । लेकिन उसके लिए आवश्यक ब्रह्मचर्य पालने को कौन तैयार होता है ? भोग के कीडे सिंह पैदा नही कर सकते । जिन्हे सचमुच सबल और वीर्यवान् सन्तान की कामना हो, उन्हे ब्रह्मचर्य का समुचित पालन करना चाहिए ।

राजा शान्तनु के अन्त:करण मे उस समय क्या भाव उत्पन्न हुआ, यह कहना कठिन है । सभव है वह सौन्दर्य के मोह मे पड गया हो । सम्भव है उसने यह सोचा हो 'गगा ने जो प्रतिज्ञा की है, उसके कारण इसे इतने समय तक कुआरी रहना पडा है । ब्रह्मचर्यमय जीवन बिताते हुए इसने अपनी प्रतिज्ञा नही तोड़ी । अतएव यह विषय-विकार को जीतने वाली है । ऐसी देवी अगर मेरे महल मे रहे और मुझे इसकी आज्ञा में भी रहना पड़े तो हानि क्या है ? यह तो बल्कि अच्छा ही होगा ।'

इस प्रकार निश्चय करके शान्तनु ने मुस्कराते हुए कहा—'मैं राजकुमारी की आज्ञा में रहना स्वीकार करता हू' ।

धाय की प्रसन्नता का पार न रहा । उसने हसते हुए कहा—'लो देवी ! अब तो आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई ?'

गगा—धाय मा ! प्रतिज्ञा करना सरल है किन्तु पालना कठिन होता है । उस हालत मे तो प्रतिज्ञा का पालना और भी कठिन हो जाता है जब कि वह हृदय से न की गई हो,

इतने मे राजा जह्नु भी अचानक वहां आ पहुंचे। दूसरी ओर शान्तनु के अन्य साथी भी आगये। जह्नु राजा ने सब वृत्तान्त सुना और अपना निर्णय दे दिया कि गंगा की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई है। उन्होने गंगा की सम्मति ली बाद मे उसकी महाराज शान्तनु के साथ विवाह-विधि सपन्न हुई।

गगा को पाकर शान्तनु बहुत प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा उस मृग ने मेरा बड़ा उपकार किया है, जो मुझे इस ओर ले आया। लोग कहने लगते है यह बुरा हुआ, यह बुरा हुआ, परन्तु क्या बुरा है और क्या भला है' यह कहना इतना आसान नही है। किस बुराई मे कौन-सी अच्छाई छिपी हुई है, यह जान लेना बड़ा कठिन है। जो होता है सो भले के लिए ही होता है यह लोकोक्ति एकदम मिथ्या नही है। उस मृग के भाग जाने की बदौलत मुझे मृगाक्षी गंगा की प्राप्ति हुई। अब मेरे लिए यह उचित होगा कि मैंने जो वचन दिया है, उसका पूर्ण रूप से पालन करूं।

राजा शान्तनु पत्नी के वश मे रहने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहता है, इस पर आप विचार करे। आप स्त्री से पतिव्रत पालने की अपेक्षा करते हैं,पर कभी यह भी सोचा है कि स्त्री के लिए पतिव्रत धर्म है तो पुरुष के लिए पत्नी-व्रत भी धर्म कहा गया है। पति अगर स्वामी है तो पत्नी क्या स्वामिनी नही है! पति अगर मालिक कहलाता है तो पत्नी क्या मालकिन नही कहलाती? ऐसी दशा मे पत्नी के प्रति आपका क्या कर्त्तव्य है और आपको किस प्रकार पत्नीव्रत का पालन करना चाहिए? इन प्रश्नो पर आप शांतचित्त से विचार कीजिए।

प्राय: पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया अपने वचन की पक्की होती हैं। पुरुष बोलते भी देर नही करते और बदलते भी देर नही करते।

गंगा का कथन सुनकर राजा विचारने लगा—गगा कितनी निस्पृह और कितनी दृढ़ है! उसकी दृढता से प्रकट है कि वह विषयभोग की कीट नही है! इसी कारण वह अपनी प्रतिज्ञा के लिए पति को त्यागने की बात कहती है पर प्रतिज्ञा को नही त्यागना चाहती।

राजा ने प्रकट में कहा—राजकुमारी, इसमें तो सदेह नही कि मैं तुम्हारे सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ हू। तुम्हारा शारीरिक सौन्दर्य असाधारण है, यह तो साफ दिखाई दे रहा है। पर शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा भी एक विशिष्ट सौन्दर्य तुम्हारे अन्त करण में है, जिसे मैं देख सका हू। बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा तुम्हारा आन्तरिक सौन्दर्य ही मुझे अधिक मुग्ध बना रहा है। मै असली और नकली सौन्दर्य की पहिचान जानता हूं। असली सौन्दर्य अन्तर से उत्पन्न होता है और वह अन्तरंग तथा बहिरंग को प्रकाशमान बना देता है। बाह्य सौन्दर्य मे यह विशेषता नही होती। इसलिए यह सच है कि मैं तुम्हारे सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ हू, लेकिन इसमे मेरा अपराध क्या है? अगर किसी का अपराध हो भी तो वह तुम्हारे सौन्दर्य का ही हो सकता है। राजकुमारी! मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसमे किसी प्रकार का स्वार्थ नही है, वह मतलब निकालने की चाल नही है, उसमे विषय-वासना की प्रधानता नही है। मैंने हृदय से प्रतिज्ञा की है। मेरु चाहे डिग जाए मगर मैं अपनी प्रतिज्ञा से नही डिग सकता।

को क्यों नही देखते ! जब महाराज ने भी वन में विवाह-संस्कार कर लिया तो प्रजा पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? यही न कि सादगी से बिना आडम्बर ही ऐसे कार्य कर लेनें चाहिए ।

राजा शान्तनु का यह वन–लग्न आजकल की विवाह की वृथा व्यय वाली पद्धति पर क्या प्रकाश डालता है, यह विचारणीय बात है । आज विवाहो मे जो खर्च किया जाता है, उसके कारण समाज के अधिकाश लोगों को अत्यन्त कठिनाई उठानी पड़ती है । उनके लिए शादी बर्बादी बनी हुई है । अधिकांश लोग इतने तग हो जाते हैं कि उनके यहां 'जान' क्या आती है मानो उनकी 'जान' निकलने लगती है । राजा शान्तनु एक बडा राजा था, फिर भी उसने सादगी के साथ शादी की थी । लेकिन आज आपका काम अंगरेजी बाजों के बिना नही चल सकता ! इस प्रकार की खर्चीली पद्धति के कारण समाज की बड़ी हानि हो रही है ।

राजा शान्तनु शिकार खेलने गया था । वह न बरात सजाकर ले गया था और न विवाह के लिए बहुमूल्य सामग्री साथ ले गया था । अतएव उसका विवाह कितनी सादगी से सम्पन्न हुआ होगा । और विवाह करने मे कितनी देर लगी होगी ? राजा के इस विवाह के साथ आजकल के विवाहो की तुलना तो कीजिए !

हस्तिनापुर के लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार प्रकट करने लगे । मगर अधिकाश की सम्मति यही रही कि यह आदर्श विवाह है । जैसे वर वैसी ही वधू । महाराज इतने दिनो तक अविवाहित रहे मगर आज तक कभी किसी

पति और पत्नी मे से किसे किसके अधीन रह चाहिए, इस संबध में कोई एकान्त निर्णय नहीं किया सकता । पति और पत्नी का दर्जा बराबर है तथापि दो मे जो अधिक बुद्धिमान् हो उसकी आज्ञा कम बुद्धिमान् मानना चाहिए, ऐसा करने से ही गृहस्थी में सुख-शा कायम रह सकती है ।

४ : पावन प्रतिज्ञा

जैसे मेघ विद्युत से शोभा पाता है उसी तरह राजा शान्तनु गगा के साथ शोभा पाने लगे । शान्तनु के साथी वर वधू को हाथी पर सवार कर हस्तिनापुर लाये । हस्तिनापुर में सर्वत्र राजा शान्तनु के विवाह की चर्चा होने लगी। जितने मु ह उतनी बातें ! कोई कहता—'महाराज को क्या सूझा कि वनवासिनी से विवाह कर लिया !' कोई कहता 'महाराज का ही नही, हम सब का भी अहोभाग्य समझना चाहिए कि हमे गंगा देवी सरीखी तपस्या करने वाली रानी प्राप्त हुई है ! ऐसी पवित्रात्मा के योग से प्रजा मे भी सुख और शांति बढ़ेगी ।'

कोई कहता—'भाई और तो सब ठीक है, लेकिन महाराज का विवाह जङ्गल में हो गया, यही ठीक नही हुआ । हम लोग विवाह के उत्सव को देखना चाहते थे, सो हमारी चाह यो ही रह-गई !'

कोई उत्तर देता हुआ कहता—'तुम उत्सव के लिए ही रो रहे हो मगर महाराज और महारानी की ऊंची भावन

मगर मेरे और इनके सहयोग से कोई विशेष अच्छा कार्य होना चाहिए। अभ्यास करते-करते उसे मालूम हुआ कि पति में अनेक गुणो के साथ एक दुर्गुण भी है और किसी प्रकार उसे दूर करना चाहिए। वह मृगया अवगुण है, जो अन्य गुणो के साथ शोभा नहीं देता। अगर किसी तरह वह दूर हो जाय तो बहुत कल्याणकारी होगा।

इस प्रकार विचार कर और अवसर देखकर वह शान्तनु के पास गई और नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। शान्तनु ने उससे कहा—कहो, क्या इच्छा है ?

निर अपराधी वन पशुओ का मृगया खेलन काज।
करते ही तुम घात राय यह मुझे है आती लाज॥
कहा रानी ने करो प्रतिज्ञा सजूं न मृगया-साज।
सब ....भीष्म की॥

शान्तनु के प्रश्न के उत्तर में गंगा ने कहा—'महाराज ! मेरी इच्छा तो यह है कि मैं अपनी इच्छा पर ही विजय प्राप्त करूं; किन्तु अभी तक ऐसी शक्ति मुझे प्राप्त नही हो सकी है। एक बात कई दिनो से मेरे दिमाग में घूम रही है। आज आपके सन्मुख रखना चाहती हू। मेरी समझ मे यह नही आता कि जङ्गल के निरपराध पशुओ ने आपका क्या बिगाड़ किया है, जिससे आप उन पर चढ़ाई कर देते है ? वे मुंह मे तृण दबाये रहते हैं फिर भी आप उन्हे मार डालते हैं, ऐसा उनका क्या अक्षम्य अपराध है ? बड़े से बड़ा अपराध करने वाला भी अगर तृण मुंह से दबा लेता है तो उसे क्षमा किया जाता है। ऐसी दशा में मृगो के वध का क्या कारण है?

की बहू बेटी को बुरी नजर से नही देखा। इसी प्रकार गगा देवी ने भी इतने दिनों तक ब्रह्मचर्य पाला है। अतएव यह विवाह शुभ है और राजा का शुभ विवाह प्रजा के लिए भी शुभ होता है इसलिए आशा की जाती है कि इस विवाह से जगत् का कल्याण होगा।

राजा शान्तनु प्रजा को आनन्द देने वाला था। उसके साथ गुणवती गंगा के जुड जाने से सोने में सुगन्ध की कहावत चरितार्थ होने लगी। सुन्दर मणि-काचन संयोग हो गया। प्रजा कहने लगी—संबंध तो बहुत होते हैं पर यह अनूठा संबंध बड़ा ही उत्तम है।

पति और पत्नी के दो-दो हाथ और पैर मिलकर चार हाथ और चार पैर हो जाते हैं। पति और पत्नी ने मिलकर अगर अच्छे काम किये तब तो वे चतुर्भुज अर्थात् ईश्वरीय रूप हो जाते हैं। किसी आदमी की निन्दा करनी होती है तो उसे 'गधा' कहा जाता है। लेकिन गधे की निन्दा क्यो ? निन्दनीय व्यक्ति को 'गधा' कहना क्या गधे का अपमान नही है ? बेचारा गधा बोझ लादने के समय कितना शान्त रहता है ? ऐसी दशा मे बुरा काम करने वाला आदमी गधे के समान भी कैसे रहा ?

शान्तनु के साथ रहती हुई गंगा शान्तनु के चरित्र का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगी। पत्नी दूसरो के कहने से ही पति के चरित्र को अच्छा या बुरा नही मान लेती है, वरन् वह स्वय उसके चरित्र का अभ्यास करती है। गगा भी अपने पति के चरित्र का अभ्यास करने लगी। वह सोचती थी कि मेरे सौभाग्य से ही मुझे ऐसे पति मिले हैं

शासन-मार्ग में कभी-कभी निष्ठुर कार्य करना पड़ता होगा फिर भी निष्ठुरता के बिना निष्ठुर कार्य हो सकता है।

शान्तनु—क्या कहती हो! निष्ठुरता के बिना ही निष्ठुर कार्य हो सकता है?

गंगा—जी हां, यही तो कह रही हूं। चिकित्सक जब ऑपरेशन करता है तो ऊपर से ऐसा जान पड़ता है, मानो वह कसाई को मात कर रहा हो! मगर उसके हृदय में भी क्या निष्ठुरता होती है? निष्ठुर कार्य करते हुए भी चिकित्सक का हृदय तनिक भी निष्ठुर नहीं होता। यही बात शासन-कार्य के सम्बन्ध में कही जा सकती है।

शान्तनु—देवी! तुम फिर दर्शन शास्त्र की गहराई में उतर रही हो!

गंगा—सो तो उतरना ही पड़ेगा। बिना दर्शन शास्त्र के मनुष्य-समाज अंधा नहीं हो जाएगा? दर्शनशास्त्र मनुष्य समाज का पथ-दर्शक है। दर्शनशास्त्र को मानव जीवन से जुदा नहीं किया जा सकता। आप जिस राजनीतिशास्त्र का उल्लेख करते हैं, वह क्या है? वह दर्शन का ही एक अंग तो है। ऐसी स्थिति में दोनों का विरोध जहां दिखाई पड़ता हो, वहां समन्वय बुद्धि का अभाव समझना चाहिए। विरोध के विष का मंथन करके, उसमें से अमृत निकालने की कला हमें सीखनी होगी। इस कला के अभाव में ही अनेक विरोधाभास विरोध बनकर हमारी बुद्धि को विकृत एवं भ्रान्त बना देते हैं। संसार के इतने मत-मतान्तर किस बुनियाद पर खड़े हैं? इनकी बुनियाद है सिर्फ समन्वय-

आप जैसे न्यायनिष्ठ महान् नृपति के लिए यह अन्याय शोभा नही देता। आत्मा जैसे मनुष्य में है वैसे ही पशुओ मे भी है। फिर क्या कारण है कि हमारे सद्व्यवहार की, नीति की और शिष्टाचार की सीमा मानव-जाति तक ही समाप्त हो जाए ? क्यो न वह पशु-पक्षी एवं कीट-पतङ्ग तक भी फैले ?'

गंगा का भावपूर्ण कथन सुनकर राजा बोले-देवी तुम भावुक हो। होना ही चाहिए, क्योंकि भावुकता स्त्रीजाति का सहज गुण है। मगर भावुकता से पुरुषों का काम नहीं चल सकता। उनमें यथोचित निष्ठुरता भी चाहिए। विशेषतः राजाओ मे तो उसका होना आवश्यक भी माना जाता है। कीडी और कुंजर मे भी आत्मा की समानता प्रकट करके तुमने दर्शनशास्त्र की अभिज्ञता प्रकट की है, मगर मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध राजनीतिशास्त्र से है। जहां दोनों शास्त्र एक दूसरे के विरूद्ध हो, वहां राजा का क्या कर्त्तव्य होगा ? वह दर्शनशास्त्र पर आंख मूंदकर विचार करेगा अथवा राजनीतिशास्त्र का अनुसरण करके अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा ?

गंगा—नाथ ! स्त्रीजाति का सहज गुण होने के कारण ही भावुकता क्या पुरुष-जाति के लिए अवगुण सिद्ध हो सकता है ? भावुकता हृदय की एक संवेदनशील वृत्ति है। हृदय क्या स्त्रियों मे ही होता है ? पुरुषों में नहीं होता ? या उन्हें हृदयहीन होना चाहिए ? स्त्री और पुरुष मे मौलिक अन्तर न होने के कारण एक का गुण दूसरे का अवगुण नहीं बन सकता। रही निष्ठुरता की बात, सो

शान्तनु देवी ! आखिर ये पशु किस काम के हैं ? मैं वन में जाकर और उन निरर्थक पशुओं को मारकर अपनी वीरता जागृत करता हूं, अपना स्वास्थ्य अच्छा रखता हूं और बल बढाता हूं । इसलिए शिकार खेलने में कोई हर्ज नही है ।

गगा—महाराज ! कौन जीवधारी किस काम का है या निरर्थक है, इसका निर्णय करना सरल नही है । मनुष्यों के लिए अगर मृग निरर्थक है तो मृगो के लिए क्या मनुष्य निरर्थक नही हैं ? निरर्थकता और सार्थकता की कसौटी मनुष्य का स्वार्थ होनी उचित नही है । मानवीय स्वार्थ की कसौटी पर किसी की निरर्थकता का निर्णय नही किया जा सकता । मृग प्रकृति की शोभा है । उन्हे जीवित रहने का उतना ही अधिकार है जितना मनुष्य को । क्या समग्र विश्व का पट्टा किसी ने मनुष्य-जाति के नाम लिख दिया ? अगर नही तो जङ्गली पशुओ को सुख-चैन से क्यो न रहने दिया जाये ।

आप कहते हैं कि पशुओं को मारने से वीरता जागृत होती है । मैं नम्रतापूर्वक यह जानना चाहती हू कि वीर पुरुष की वीरता का उपयोग क्या है ? अगर वीरता निर्बलो और असहायो की सहायता के लिए नही वल्कि संहार के लिए है तो ऐसी वीरता जगाने से वीरता न जगाना ही अधिक उचित है । सत्पुरुषों की वीरता रक्षा मे है, प्राणियों के संहार मे नही । इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य रक्षा की बात भी आपने कही है । पर स्वास्थ्य रक्षा के उचित उपाय दूसरे बहुत हैं । अपने मनोरंजन के लिए दूसरों के प्राण लेना

बुद्धि का अभाव । अगर हम विभिन्न दृष्टिकोणो मे से सत्य का स्वरूप देखने की क्षमता प्राप्त कर लें तो जगत् के एकान्त-वाद तत्काल विलीन हो जाएंगे और वह विलीन होकर भी नष्ट नही हो जाएगे वरन् एक अखंड और विराट सत्य को साकार बना जाएंगे । नदियां जब असीम सागर मे विलीन होती हैं तो वह नष्ट नही हो जाती, वरन् सागर का रूप धारण कर लेती हैं । इसी प्रकार एक दूसरे से अलग-अलग प्रतीत होने वाले दृष्टिकोण मिलकर विराट सत्य का निर्माण करते हैं । शास्त्रो में सत्य को भगवान् की स्तुति मे यह कहा गया है—

उदधाविव सर्वसिन्धव. समुदीर्णास्त्वयि नाथ ! दृष्टयः ।

अर्थात्–हे नाथ ! जैसे समुद्र में समस्त नदियां मिल जाती है, उसी प्रकार तुममे सब दृष्टिया—दृष्टिकोण—समाविष्ट हो जाते हैं ।

इससे स्पष्ट है कि उचित समन्वय के यन्त्र मे ढल कर जब विरोधी मालूम होने वाले–पर जो वास्तव मे विरोधी हैं नही ऐसे विचार एक दूसरे के साथ मिलते हैं तभी सम्पूर्ण-परिपूर्ण सत्य का ठीक स्वरूप बनता है । दर्शनशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के विरोध को भी हम इस प्रकार दूर कर सकते है । पर जाने दीजिए, इस गहराई मे हम न उतरें । हम अपनी मूल बात पर ही आजाते हैं ।

मैं आपसे शिकार के विषय में निवेदन कर रही थी । इस विषय मे तो राजनीति और दर्शन का कोई विरोध भी नही है । राजनीति शिकार का समर्थन नही करती । ऐसी स्थिति मे दोनो के विरोध का प्रश्न ही नही उठता ।

उन्हें कठिनाई से चार-पांच घन्टा सोने का समय मिलता है। जब उन्हे बहुत ज्यादा नीद सताने लगती है तो वहीं के वही गद्दी पर लुढ़क रहते है और फिर जल्दी उठ बैठते हैं। क्या यह पाप नही है ? नौकरों से इस प्रकार अधिक काम लेना सर्वथा अनुचित है।

कल्पना कीजिए, किसी गाडी मे दो बछडे जुते हुए है। आप रास्ते मे पैदल चल रहे है। गाड़ीवान ने आप से कहा कि आप पैदल क्यो चलते हैं ? गाड़ी मे आकर बैठ जाइए। गाड़ीवान किसी कारण से ऐसा कहता है कि लेकिन उस समय आप क्या सोचेंगे ? क्या आप यह नही सोचेंगे कि गाडी में छोटे-छोटे बछड़े जुते हैं। उन पर पहले ही पूरा बोझ लदा है। फिर मैं कैसे बैठ जाऊं ? धर्मशास्त्र तो अतिभार लादने को पाप कहता ही है, लेकिन आजकल का सरकारी कानून भी उसे अपराध मानता है। इसलिए सरकार ने नियम बनाया है कि तांगे में तीन या चार से ज्यादा मनुष्य न बैठें। ऐसा होते हुए भी जिस तांगे में पहले ही चार आदमी बैठे हों, उस तांगे का मालिक आपको बिना किराया लिए अगर बैठने को कहे तो आप क्या करेंगे ? क्या उस समय आप यह सोचेंगे कि यहा कौन-सी सरकार देखने बैठती है ? अगर कोई देख भी लेगा तो निपट लेंगे। पकड़ा जाएगा तो तांगे वाला पकड़ा जायगा। हमारा कोई क्या बिगाड़ लेगा ? अगर आप इस प्रकार सोचकर तांगे मे बैठ गए तो पाप आपको लगेगा या नही ? कदाचित् सरकारी जुर्म से बच भी गये तो क्या पाप से भी बच जाएंगे ? सच्चा श्रावक सदैव इस बात का विचार रक्खेगा और इस प्रकार कभी तांगे में

उचित नही कहा जा सकता । यह क्रम बहुत खतरनाक भी है । कभी प्रजा पर भी यह क्रम आ पड़ेगा ।

किसी कवि ने मृग की ओर से कहा है—

पदे पदे सन्ति भटा रणोत्सुका !
न तेषु हिंसारस एव पूर्यते ।।
धिगीदृशं ते नृपते ! कुविक्रमं ।
कृपायते यः कृपणे मृगे मयि ।।

अर्थात्—हे महाराजा ! युद्ध के लिए उत्सुक योद्धा आपको पद-पद पर मिल सकते हैं । उन पर अपना हिंसा करने का शौक पूरा कर लीजिए । मगर हम जैसे लाचार मृगों पर अपना परामक्रम दिखलाना धिक्कार के योग्य है । ऐसा पराक्रम कुपराक्रम है ।

आप लोग भी एक प्रकार से राजा हैं । आपके अधीन जो पशु और मनुष्य रहते हैं, उन पर आपका अधिकार है । आप क्या उन पर दया करते हैं ? घर में गाय भूखी चची रहे, उसे समय पर खाना-पीना न दिया जाय या पर्याप्त खाना-पीना न दिया जाय तो कौन पाप का भागी होगा ? शास्त्र मे कहा है कि भोजन-पानी का विच्छेद करना पाप है । तो क्या आपको यह पाप नही लगेगा ? इसी प्रकार किसी पर शक्ति से अधिक बोझ लादना भी पाप है । अगर पशु पर अधिक भार लादना पाप है तो मनुष्य पर अधिक बोझ लादना क्या पाप नही है ? फिर भी क्या आप अपने नौकरों के विषय मे यह विचार रखते हैं ? उन पर काम का ज्यादा बोझा तो नही डालते ? सुना है कि कलकत्ता मे मुनीमो पर कार्य का बोझ इतना अधिक रहता है कि

प्रतिज्ञाबद्ध हूं। इस प्रकार सोचकर राजा ने कहा—'ठीक है, मैं प्रतिज्ञा करता हू कि मैं आज से मृगया नही करूंगा। आज से मैं निरपराध जीवों का घात नही करूंगा। अपराधी को मारने के विषय मे तो तुम कुछ कहती नही हो, इसलिए उसकी बात अलग है।'

५ : भीष्म का जन्म

गंगा की प्रेरणा से शान्तनु ने किसी भी निरपराध जीव की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा की। महाभारत में कहा है कि शान्तनु राजा के राज्य मे कोई पशु-पक्षियो की भी हिंसा नही करता था। यद्यपि शान्तनु को पहले मृगया का व्यसन था, लेकिन गंगा की प्रेरणा से उसने इस व्यसन का त्याग कर दिया था और वह जीवो का रक्षक बन गया था। इस प्रतिज्ञा के कारण शान्तनु मानो कलंक से मुक्त हो गया। वह ऐसा जान पड़ने लगा जैसे राहु के ग्रहण के बाद चन्द्रमा प्रकाशित हुआ हो। उसकी कीर्ति चारो ओर ऐसी फैल गई जैसे चन्द्रमा का प्रकाश चारो ओर फैल जाता है। लोग कहने लगे—हमें अभी तक अर्थ और काम ही सुखदायक मालूम पड़ते थे मगर राजा शान्तनु को देखने से समझ मे आया है कि अर्थ और काम तो अनर्थ के मूल है। असली सुख देने वाला तो धर्म ही है।

जब किसी मनुष्य मे सुबुद्धि जागृत होती है तो वह अर्थ और काम को हीन समझने लगता है और धर्म का कभी अपमान नहीं होने देता। पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि अगर किसी के पास धन और धर्म दोनो

नहीं बैठेगा। यही नहीं, बल्कि ज्यादा बैठने वालों को भी वह मना करेगा।

और गाड़ी मे छोटे बछड़ों को जोतने के समान ही बाल-विवाह करना भी पाप है या नही ? अपरिपक्व उम्र के बालक और बालिका पर विवाह का बोझ लाद देना क्या उचित कहा जा सकता है ? जहां ऐसे बच्चे गाडी मे जोते गये हो, उस गाड़ी मे बैठना अर्थात् उस विवाह मे सम्मिलित होकर लड्डू खाना क्या योग्य है ?

बालक किसे माना जाय, यह विवादग्रस्त बात हो सकती है। गांधीजी ने तो यहा तक लिखा है कि यदि लड़की का विवाह चौदह वर्ष से कम उम्र में हुआ है तो वह विवाह, विवाह ही न माना जाय और ऐसी विधवा को विधवा ही न समझा जाय। अगर मैं भी ऐसा कहू तो क्या आप मानेंगे ? इसलिए इस बारीकी मे न उतर कर इतना कहना पर्याप्त होगा कि ऐसी गाड़ी मे बैठना पाप है।

गगा कहती है—नाथ ! आप बेचारे पशुओ को मारते हैं पर उनका क्या अपराध है ? आप उन पर दया कीजिए। उन्हे मारिये मत। कदाचित् आप यह सोचें कि लम्बे समय की आदत पडी हुई है। परन्तु मैं निवेदन करती हू कि आप जैसे प्रजा के स्वामी हैं उसी प्रकार अपनी आदतो के भी स्वामी हैं। मैं आपसे याचना करती हू कि आप मृगया न किया करें।

महारानी गंगा का कथन राजा शान्तनु को युक्ति-युक्त लगा। उन्होंने यह भी विचार किया कि गंगा को मांगने का अधिकार है। मैं उसकी आज्ञा मानने के लिए

समय मे भारत मे धर्म पर सकट आ गया था । औरगजेव कट्टर सम्प्रदायवादी था । उस समय सिक्ख-गुरु तेगबहादुर ने तथा उनके अनुयायी अनेक लोगो ने क्या कम कष्ट सहन किये थे ?

मजहबी कानून के अनुसार औरगजेव ने सोचा—काफिरो को मुसलमान बनाना जरूरी है। मगर जब तक लोगो का अन्न का कष्ट नही होता, तब तक उन्हे मुसलमान बनाना आसान नही है । अन्न का कष्ट बड़ा जबर्दस्त होता है । उससे घबराकर लोग जल्दी मुसलमान हो जाएगे । ऐसा सोचकर उसने अन्न का दुर्भिक्ष फैलाने का निश्चय किया । अपना इरादा पूरा करने के लिए बादशाह ने कुछ सेना काश्मीर भेजी और हुक्म दे दिया कि सेना वहा जाकर फसल पर अधिकार कर ले । जो लोग मुसलमान होना स्वीकार करें, उन्हे फसल ले लेने दी जाय और जो मुसलमान होना स्वीकार न करे उन्हे न लेने दी जाए । उनकी फसल जब्त कर ली जाय । सेना ने यही किया । लोग परेशान हो गए । धर्म पर दृढ़ रहने वाले सभी तो होते नही हैं और न सब धर्म के लिए सब कुछ सहन ही कर सकते हैं । इसलिए बहुत से लोग इस अन्न-सकट के कारण मुसलमान हो गए ।

अपने कार्य में सफलता मिलती देखी तो बादशाह को और लोभ हुआ । उसने सोचा—लोगो को मुसलमान बनाने का यह उत्तम उपाय है । बस, सेना भेज दी जाय और साथ मे काजी-मुल्ला को भेज दिया जाय तो इस्लाम का अच्छा प्रचार होगा ।

बादशाह ने दूसरी बार पजाब में सेना भेजी । पजाब

रह सकते हों तो भले रहे। लेकिन दोनों में से एक के जाने का समय आये तो उस समय धन भले ही चला जाय मगर धर्म को नही जाने देना चाहिए। परन्तु आज लोगो की क्या दशा है ? आठ आने के लिए ही लोग क्या असत्य बोलने को तैयार नही हो जाते ? ऐसा करने वाला धन को बड़ा मानता है या धर्म को ? धर्म का त्याग करके ग्रहण किया हुआ धन टिक नहीं सकता। धर्म तो गया ही है, तब धन भी गये बिना नहीं रहेगा। इस प्रकार अन्त मे दोनों से ही हाथ धोना पडेगा। इसके विपरीत अगर धर्म को पकड कर रक्खा जायगा तो गया हुआ धन भी बिना आये नही रह सकता। वस्तुत. धर्म के त्याग मे कल्याण नही है। कल्याण तो धर्म की आराधना मे है। धर्म के प्रेमी की प्रतिज्ञा होती है-

सिर जावे तो जावे मेरा सत्य-धर्म नही जावे।

धर्म का सौदा सिर के बदले में होता है। धर्म का पालन वही कर सकता है जिसमे धन तो क्या, प्राण जाने पर भी धर्म का त्याग न करने का साहस होता है। मर्यादा-पुरुष रामचन्द्र और सत्यवीर हरिश्चन्द्र की कथाएं इसके लिए प्रसिद्ध हैं। कहा जा सकता है कि रामचन्द्र और हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिए अनेक कष्ट सहन किये, यह कथन काल्पनिक भी हो सकता है और जनता को सत्य की ओर आकर्षित करने के लिए ये कथाए गढ ली होंगी। मगर ऐसा समझना भूल है। धर्म के लिए कष्ट सहने वाले विशिष्ट पुरुप सदा से होते आये हैं। पौराणिक काल मे भी हुए हैं और समीपवर्ती ऐतिहासिक काल मे भी हुए हैं।

इतिहास से विदित होता है कि सम्राट् औरगजेब के

बादशाह का बुलावा आने पर गुरु तेगबहादुर दिल्ली जाने के लिए तैयार हुए। उनके अनुयायियो ने कहा—बादशाह जुल्मी है। वह आपको जीवित नही आने देगा। इसलिए आपका वहां जाना ठीक नही है।

गुरु तेगबहादुर ने कहा—मुझ जैसे किसी का सिर जाने पर ही लोगो मे जागृति आएगी। बलिदान बिना जनता में तेजस्विता नहीं आ सकती। इस समय धर्म-रक्षा के लिए बलिदान की आवश्यकता है। मेरे बलिदान से धर्म की रक्षा होगी। इस पर भी तुम मुझे रोकते हो तो गुरु नानक का कथन याद करो। वे कह गये हैं कि मेरे समान सात आदमियो का बलिदान होने पर ही कल्याण होगा। अब तुम्ही बताओ कि मैं गुरु की आज्ञा मानूं या अपनी जान बचाऊं?

सिख अपने गुरु की आज्ञा के बहुत पाबंद होते हैं। इसलिए वे आगे कुछ न बोले। आखिर गुरु तेगबहादुर दिल्ली गये। बादशाह से मिले। बादशाह ने उनके सामने बडे-बडे प्रलोभन रखे। गुरु तेगबहादुर ने कहा—सब चीजो की अपेक्षा मेरा धर्म बडा है। मैं ससार की किसी भी चीज के लिए अपना धर्म नहीं त्याग सकता।

जब प्रलोभन हार गया तो धमकिया आरम्भ हुई। बादशाह ने कहा—अगर सीधी तरह मान जाओगे तो ठीक है वर्ना जबर्दस्ती तुम्हारे मुंह मे गाय का गोश्त ठूंस दिया जाएगा। अगर तुम में कोई चमत्कार हो तो बतलाओ।

तेगबहादुर ने कहा—चमत्कार बतलाना बाजीगरो का काम है। ईश्वर के भक्त चमत्कार नही बतलाया करते। वे

के लोग इस मुसीबत से घबराकर सिक्खों के गुरु तेगबहादुर के पास पहुचे । उनसे बोले—धर्म पर ऐसा विकट सकट आया है। आप हम लोगो की रक्षा कीजिए। गुरु तेगबहादुर ने उत्तर दिया—तुम लोग स्वय बादशाह को जुल्म करने के लिए उत्साहित करते हो। अगर एक भी आदमी मे साहस हो तो वह सब मे तेज भर सकता है । अगर तुम लोगो को धर्म की रक्षा करनी है तो एक काम करो । बादशाह से यह कह दो कि आप हम लोगो को व्यर्थ ही परेशान करते हैं । अगर हमारा गुरु तेगबहादुर मुसलमान हो जाएगा तो लाखो करोडो आदमी बिना जुल्म किये ही मुसलमान हो जाएगे । तुम्हारे ऐसा कहने पर वह मुझे मुसलमान बनाने को ललचाएगा । इससे आगे मैं स्वय समझ लू गा ।

लोगो ने बादशाह को ऐसा ही कहला दिया । बादशाह ने सोचा—यह ठीक है । किसी उपाय से गुरु तेगबहादुर को मुसलमान बना लिया जाय । उसने तेगबहादुर को जल्दी दिल्ली पहुचने का बुलावा भेज दिया ।

औरगजेब ने मजहब के नाम पर बहुत जुल्म किया था । वह समझता था कि मैं बहुत अच्छा कर रहा हू, मगर वास्तव मे उसके जुल्मो के कारण मुगल सल्तनत दिन प्रति-दिन गिरती जा रही थी । मुगल साम्राज्य अस्त हो रहा था । औरगजेब के बाद जो बादशाह हुए वे नाम मात्र के बादशाह हुए । जब अत्याचार बढ़ता है तो यही परिणाम होता है । रावण का अत्याचार जब बढ गया तो वह, उसका परिवार और उसका राज्य मिट ही गये । जहा अन्याय है, वहा नाश है ही ।

सिर जावे तो जावे मेरा सत्यधर्म नही जावे ।

ऐसी घटनाएं समय-समय पर होती ही रहती हैं । अतएव यह कैसे कहा जा सकता है कि राम और हरिश्चन्द्र की कथाए हमारे ऊपर दबाव डालने के लिए ही काल्पनिक लिखी गई हैं ? इसलिए सत्य और धर्म का पालन करो तथा अहिंसा की असीम शक्ति प्राप्त करो ।

राजा शान्तनु को देखकर लोग कहने लगे कि अर्थ और काम तो गौण है, मुख्य वस्तु तो धर्म ही है । इस प्रकार कहते हुए लोगो ने शान्तनु का अभिनन्दन करते हुए कहा—इस समय आपके समान धर्मपालक राजा शायद ही कोई हो । जनता से यह अभिनन्दन पाकर शान्तनु ने सोचा—यह रानी का ही प्रताप है । यह सोचकर शान्तनु गंगा का और अधिक सम्मान करने लगे ।

आश्वासन दे कर रानी को लगे राज के काज ।
निशा समय में स्वप्न मे देखा रानी ने मृगराज ॥

शुभ समय मे सुत जन्मा है गंगकुंवर महाराज ।
सब मिल...... ... . भीष्म की ॥

गंगा और शान्तनु आनन्द मे समय व्यतीत कर रहे थे । उस समय प्रजा मे यह भावना हो रही थी कि ऐसे दयालु और प्रजापालक महाराजा के यहा पुत्र का जन्म हो तो अच्छा है, जिसमे हमारी सस्कृति की रक्षा हो सके । इसी समय राजा के मन मे भी पुत्र की इच्छा हुई । रानी गगा ने भी विचार किया—पतिदेव मेरा इतना सम्मान करते हैं ! इस ऋण से मुक्त होने के लिए वह शुभ समय कब आएगा जब मैं उन्हे पुत्र-रत्न का उपहार दे सकूंगी ।

यह मानते हैं कि यह सारा ही संसार चमत्कारमय है। इसलिए मुझसे और कोई चमत्कार की आशा मत कीजिए। हां, एक ही चमत्कार मैं दिखला सकता हूं। वह यह कि अवसर आने पर धर्म की रक्षा के लिए किस प्रकार प्रसन्नता के साथ प्राण दिये जा सकते हैं।

बादशाह ने कहा—यह बड़ा हठी है। शहर के चौराहे पर खड़ा करके इसे कत्ल कर दिया जाय।

गुरु तेगबहादुर अगर अपना धर्म छोड़ देते तो उन्हें लाखों-करोड़ों की सम्पदा मिलती। धर्म का त्याग न करने की अवस्था में प्राणो से हाथ धोना पड रहा है। अब सोचना चाहिए कि उन्हें इन दोनो मे से क्या करना चाहिए था ?

आज तो लोग थोड़े से लाभ के लिए भी धर्म को छोड़ बैठते हैं। दो-चार आने के लिए झूठ बोलने में संकोच नहीं करते। लेकिन गुरु तेगबहादुर ने इतनी सम्पत्ति का लोभ नहीं किया और न प्राणों की ही परवाह की। वास्तव मे ऐसी दृढता होने पर ही धर्म का पालन किया जा सकता है।

अन्त मे सिखगुरु तेगबहादुर का सिर बाजार के बीच, चौराहे पर काट डाला गया। बादशाह का खयाल था कि तेगबहादुर को इस प्रकार कत्ल करने से बहुत-से लोग डर के मारे मुसलमान बन जाएंगे। किन्तु परिणाम कुछ और ही हुआ। तेगबहादुर के बलिदान से जनता में तेज आ गया। लोग अपने धर्म की रक्षा करने मे दृढ हो गए।

तात्पर्य यह है कि धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट उठाने वाले लोग सदा होते आये हैं। उनकी टेक यही है—

आग पर घी रखने से घी का सत्व नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अत्यधिक समीपता से पति-पत्नी का सत्व भी नष्ट हो जाता है। ब्रह्मचर्य की महिमा जानने वाले और मर्यादा का पालन करने वाले विवेकी लोग सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि उनकी शक्ति का निरर्थक और अमर्याद क्षय न होने पावे।

जब महारानी गगा ने शान्तनु के शयनागार मे प्रवेश किया तो धीमी आहट से भी शान्तनु की नीद खुल गई। राजा ने आनन्दपूर्वक गगा को भद्रासन पर बिठलाया और स्वस्थ होने देकर पूछा—"आज इस समय आने का क्या कारण है ?"

रानी—प्राणनाथ ! आपकी जय हो, विजय हो। मैं आपसे जो सम्मान पा रही हूं वह ऋण के रूप मे बढता जाता है। आपके इस ऋण को मैं चुकाने मे असमर्थ हू, यद्यपि पुत्र के रूप मे उसका ब्याज चुकाना चाहती हू। मेरी यह कामना फलवती होती जान पड़ती है। अभी मैंने स्वप्न में देखा है कि एक केसरी सिंह मेरे मुख मे घुस गया है।

स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर महाराजा शान्तनु को प्रसन्नता हुई। उन्होने गगा से कहा—वल्लभे ! यह स्वप्न शुभ है। इस स्वप्न के फल-स्वरूप तुम्हे राज्य, धन और पुत्र की प्राप्ति होगी।

रानी को राज्य आदि की प्राप्ति होगी तो क्या राजा को नही होगी ? फिर राजा ने ऐसा क्यो कहा है कि तुम्हे राज्य धन और पुत्र की प्राप्ति होगी ? यद्यपि प्राप्ति तो राजा को भी

भावना मे प्रबल शक्ति होती है। भावना की अदृश्य शक्ति का महत्त्व बहुत अधिक है। इसीलिए ज्ञानी जन भावना-शुद्धि पर बहुत बल देते हैं। यह उक्ति भी प्रसिद्ध है—

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सफलता मिलती है। स्वार्थ की भावना से दूसरी तरह का काम होता है और परमार्थ की भावना से दूसरी तरह का। शान्तनु और गंगा दोनों की ही भावना थी कि एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हो तो अच्छा है। पुत्र शब्द की व्युत्पत्ति है—

पुनातीति पुत्रः

अर्थात् जो अपने पिता के धर्म को उज्ज्वल करे, वही पुत्र है।

सब की भावना फली या आने वाले प्राणी के पुण्य ने काम किया, यह कौन कह सकता है? यह भी कैसे कहा जा सकता है कि दोनो का प्रभाव न हुआ हो? कारण कुछ भी हो, एक रात गंगा ने स्वप्न में बड़े केसरी सिंह को अपने मुख में प्रवेश करते देखा। यद्यपि गंगा स्वय भी स्वप्नशास्त्र को जानती थी फिर भी वह अपनी ही बुद्धि पर अवलंबित नही रही। वह अपने शयनागार से उठ कर शान्तनु के शयनागार मे गई।

इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में पति और पत्नी का एक ही बिस्तर पर सोना तो दूर रहा, दोनो एक शयनागार मे भी नही सोते थे। वास्तव मे पति-पत्नी की अत्यधिक समीपता हानिकारक ही सिद्ध होती है। जैसे

खारा होता है । गगा का जल समुद्र में मिलता है तो वह भी खारा वन जाता है । ऐसी दशा मे गंगा और समुद्र के संगम को तीर्थ क्यो माना जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है। जैसा सुना है उसके अनुसार और जैसा पढा है उसके अनुसार गगा की धारा तीव्र वेग वाली होती है, इस कारण वह समुद्र को भेद कर दूर तक समुद्र मे चली जाती है । खारे पानी मे मीठे पानी की तह मिलने से जहाज वालो को कितना आनन्द होता है, यह सभी समझ सकते हैं। इस प्रकार समुद्र मे प्रवेश करने के वाद भी गंगा का मीठा पानी मीठा ही वना रहता है, इसी कारण शायद गगा-सागर-सगम को तीर्थं माना जाता है । जो खारे मे रहकर भी मीठा वना रहता है, वह तीर्थ क्यो न हो ?

सव लोग कहने लगे—शान्तनु और गगा से जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह मानो समुद्र मे से रत्न निकला है। जैसे सागर मे गगा के मिलने से सागर का सम्मान वढा है, उसी तरह गगा के मिलने से शान्तनु का भी सम्मान वढा है।

गंगा का चरित्र स्त्री-समाज के लिये उपादेय है। उन्हे समझना और ध्यान देना चाहिए कि पति से मिलकर उन्होने यदि पति का सम्मान वढाया तव तो अपने स्त्री-धर्म का पालन किया है, अन्यथा नही ।

जैसे अधे को आख मिलने से और निपूते को पुत्र मिलने से आनन्द हुआ है, उसी प्रकार हस्तिनापुर मे राजा-प्रजा को आनन्द होता । शान्तनु के यहा पुत्र होने से सव का हृदय अपार हर्ष से पुलकित हो गया । पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य मे शान्तनु ने खूव आमोद-प्रमोद के साथ उत्सव मनाया और दान देकर याचकों को अयाचक वना दिया ।

होगी लेकिन राजा ने रानी को प्रधानता दी है। जब जिसे सम्मान देना होता है, तब उसे प्रधानता दी जाती है।

राजा का कथन सुनकर गगा को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मन ही मन सोचने लगी—पति का मुझ पर कितना अनुग्रह है कि वे मुझे इस तरह सम्मानित करते हैं। इस प्रकार विचार करती हुई वह अपने शयनागार मे लौट आई।

पहले शान्तनु मृगया का शौकीन था मगर गगा के ससर्ग से उसकी वह आदत बदल गई। इस कारण सब लोग उसकी प्रशसा करके कहने लगे—इस धर्मात्मा राजा के यहा धर्मात्मा पुत्र हो तो अच्छा। जैसे समय पर वर्षा होने से सब को आनन्द होता है, उसी प्रकार सब की भावना के अनुसार गगा ने सिंह का स्वप्न देखकर गर्भ धारण किया और गर्भ का काल समाप्त होने पर एक तेजस्वी और लक्षण-सम्पन्न पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के जन्म से शान्तनु और गगा को तो हर्ष हुआ ही, किन्तु प्रजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। राज्य में घर-घर ऐसा उत्सव मनाया जाने लगा, मानो प्रत्येक घर मे ही पुत्र हुआ हो। लोग कहने लगे—

गगा और समुद्र के सगम को तीर्थस्थान समझा जाता है। इसी प्रकार गंगा और शान्तनु के संगम से जो पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह भी लोगो को आनन्द देने वाला होगा—शान्तनु समुद्र के समान है और गगा उन्हे गगा के समान मिली है। इस कारण यह भी एक सजीव तीर्थ हो गया है। इस तीर्थ का फल जगत् का कल्याण करने वाला हो तो आश्चर्य ही क्या है?

कहा जा सकता है—गगा का जल मीठा और समुद्र का

मध्यस्थ भाव से परिवर्तन को देखता रहे और समभाव धारण करे। किन्तु कवि के शब्दों में मनुष्य चाहता है—

जग के पदार्थ सारे, वर्तें इच्छानुसार जो मेरी।
तो मुझको सुख होवे पर ऐसा हो नही सकता ॥

संसार के सब पदार्थ अगर मनुष्य की इच्छा पर चलनें लगे तो मनुष्य राजी रहे। "पर ऐसा हो नहीं सकता।" अतएव मनुष्य के लिए सुख का एक ही मार्ग रह जाता है और वह यह है कि किसी भी प्रकार के परिवर्त्तन के समय वह समभाव का परित्याग न करे। अगर विभिन्न परिवर्त्तनो मे वह राग-द्वेष धारण करेगा तो उसे सुख-दुःख के झूले मे झूलना ही पडेगा। आज पैसे भर सुख का अनुभव करेगा तो कल रुपया भर दुःख आकर उसे विह्वल बना देगा। अतएव जो परिवर्त्तन होता है, वह होता है, उसमे हर्ष-विषाद करने की आवश्यकता नही। गगा ने इस तथ्य को समझ लिया था।

मृगया-रसिको के कहने से राजा चढे शिकार,
महारानी ने आ समझाया माना नही लिगार।
निज सुत लेकर के गगाजी गई पिता घर-द्वार,
सब मिल · ······· ······· ·· ······ · ·····भीष्म की ॥

राजा शान्तनु के पास कुछ ऐसे बुरे लोग भी थे जो शिकार के शौकीन थे। अच्छा राजा भी बुरे लोगों की संगति से बुरा बन जाता है। कुसंगति के प्रभाव को कौन नही जानता? कुसंगति मे अच्छे-अच्छे बिगड कर मिट्टी मे मिल गये हैं। शक्कर मीठी होती है और मिर्च तीखी होती है। शक्कर खीर में और मिर्च शाक मे डाली जाय तो दोनो सुधर जाते

६ : पति का परित्याग

पुत्ररत्न पाकर गगा मानो निहाल हो गई। उसकी चिर-आकाक्षा सफल हुई। शान्तनु और गगा अभिन्न-हृदय तो थे ही, दोनो के हृदयो को जोड़ने वाली एक कड़ी और बन गई। राजा और रानी प्रसन्नता और आनन्द मे अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए दिन व्यतीत करने लगे।

सब दिन समान नही रहते। जैसे जड़ प्रकृति क्षण-क्षण पलटती रहती है उसी प्रकार मानव-प्रकृति भी प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है। परिवर्त्तन चाहे किसी को इष्ट हो, चाहे अनिष्ट हो, शुभ हो या अशुभ हो, वह होता ही है। संसार की कोई भी शक्ति उसे रोक नही सकती। और सच तो यह है कि परिवर्त्तन मे ही गति है, प्रगति है, विकास है, सिद्धि है। जहा परिवर्त्तन नही, वहा प्रगति को अवकाश भी नहीं है। वहा एकान्त जड़ता है, स्थिरता है, शून्यता है। अतएव परिवर्त्तन जीवन है और स्थिरता मृत्यु है। परिवर्त्तन के आधार पर ही विश्व का अस्तित्व है। ऋतु-परिवर्त्तन न हो तो क्या परिणाम निकलेगा? मानव-जीवन मे अवस्थाओ का परिवर्त्तन अगर न होता तो क्या स्थिति होती? वस्तुत परिवर्त्तन होना आवश्यक है। अगर आवश्यक न हो तो भी अनिवार्य है।

इस प्रकार परिवर्त्तन के चक्र पर चढ़ा हुआ सारा ससार घूम रहा है। लेकिन मनुष्य मोह के वश होकर किसी परिवर्त्तन को सुखद और कल्याणकारी मान लेता है और किसी को दुखद एव अकल्याणकारी। कोई भी नैसर्गिक परिवर्त्तन मनुष्य से पूछकर नही होता। वह मानवीय इच्छा से ऊपर है। ऐसी स्थिति मे मनुष्य को उचित तो यह है कि वह

आज्ञा में रहना चाहिए अथवा पति को पत्नी की आज्ञा में रहना चाहिए। इस प्रकार का कोई एकान्त नियम नही बनाया जा सकता। इस विषय में नीति यही कहती है कि जिसमें ज्यादा बुद्धि हो उसी की आज्ञा में दूसरे को रहना चाहिए, चाहे अधिक बुद्धि वाला पति हो या पत्नी हो। यह नही समझना चाहिए कि स्त्री छोटी होती है या उसमे बुद्धि नही होती। अतएव पुरुष, स्त्री के कहने मे कैसे रहे ? महारानी विक्टोरिया स्त्री ही थी और भारत के राजा पुरुष थे। फिर भी राजा उसकी आज्ञा मे रहे या नही ? अतएव पुरुषत्व का अभिमान करके यह मत सोचो कि हम पुरुष होकर स्त्री का कहना क्यों मानें ? स्त्री मे अगर विवेक–बुद्धि अधिक है तो उसका कहना मानने मे ही कल्याण है। स्त्री में अधिक बुद्धि होने पर भी उसकी अवगणना करना स्त्रीत्व का अपमान है और पुरुषत्व का मिथ्या अहकार है।

लोगो की बातें सुनकर शान्तनु ने कहा—अगर मैं मृगया को नही जाता तो इसमे अपवाद की क्या बात है ? निर्बलों और गरीबो की रक्षा करना मेरा धर्म है। इसी के लिए मैं राजा हू और पृथ्वीपति कहलाता हू। मैं मृगया न करके अगर अपने धर्म का पालन करता हू तो क्या बुरा करता हू ?

लोग बोले – 'आप पृथ्वीपति तो पहले भी थे। फिर भी मृगया के लिए जाते थे या नही ? मृगया करना तो राजा का कर्त्तव्य है। अतएव आपको उससे परहेज नही करना चाहिए। आप चाहे धर्म का विचार करके ही मृगया न करते हो मगर लोग तो यही समझते हैं कि राजा, रानी के गुलाम बन गये

है । अगर इसके विपरीत किया जाय तो दोनों बेकाम हो जाते हैं । इसी प्रकार बुरे के संसर्ग से अच्छा भी बुरा बन जाता है ।

राजा शान्तनु के पास रहने वालों ने उससे कहा—महाराज, कुछ विचार कीजिए । आप निरन्तर महल में ही निवास करते हैं, कभी बाहर नहीं जाते, इस कारण आपका तेज कम हो गया है । आपके शरीर में पहले जैसी तेजस्विता नहीं रही । पहले तो महारानी नई आई थी, इसलिए हम आपसे कुछ नहीं कह सकते थे लेकिन अब तो राजकुमार का भी जन्म हो गया है । अतएव अब महारानी की ओर से सन्तोष कीजिए और अपने शरीर के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दीजिए । आपके विषय में लोग तरह-तरह की बातें करते हैं । इस अपवाद को मिटाना भी आवश्यक है । कहावत है—

यद्यपि शुद्धम् लोकविरुद्धम्,
न हि करणीयं न हि चरणीयम् ॥

कोई काम भले शुद्ध हो, अगर वह लोक-विरुद्ध है तो नहीं करना चाहिए । आपके कानों तक तो बात पहुंच नहीं पाती । मगर लोग आपस में कहते हैं—राजा पहले कैसे थे और अब कैसे हो गए है ! रानी की गुलामी करते-करते थकते ही नहीं ! कभी मृगया के लिए भी तो बाहर नहीं निकलते ! यह लोकापवाद आपके लिए बहुत अपमानजनक है । अतएव आप महल में ही न घुसे रहें वरन् मृगया के लिए वन में पधारें । इससे आपका स्वास्थ्य भी सुधरेगा और लोकापवाद भी दूर हो जायगा ।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि पत्नी को पति की

वन के दीन पशुओ ने आपका कुछ अपराध किया है कि उन्हे मार डालने की तैयारी की है ? आपने निरपराध जीवो की हिंसा करने का त्याग किया है ।

राजा ने उत्तर दिया—महारानी, तुम महल के काम देखो, हम लोगो के काम मे पडना उचित नही है । हमारे कार्य मे हस्तक्षेप करना ठीक नही ।

राजा का उत्तर सुनकर गगा दग रह गई । वह मन में सोचने लगी—आज महाराज का मिजाज दूसरा ही मालूम होता है । इसके बाद वह बोली—महाराज ! मैं केवल महल की रानी ही नही हू, आपकी धर्मपत्नी भी हूं । आपके धर्म की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है । इस कारण पूछती हूं कि आज आपने मृगया की तैयारी कैसे करवाई है ?

राजा बोला—धर्म की बात मैं स्वय समझता हू । तुम समझाने का कष्ट मत करो ।

गंगा सोचने लगी—यह तो श्मशान-वैराग्य ही हुआ । राजा अपनी प्रतिज्ञा की उपेक्षा करते जान पडते हैं । 'राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा ?' अर्थात् किसी ने राजा को भी मित्र होते देखा या सुना है, यह उक्ति आज चरितार्थ हो रही है । लेकिन कुछ भी हो एक बार फिर समझाना चाहिए । यह सोचकर गगा ने कहा—

वैरिणोऽपि हि मुच्यन्ते प्रापन्नास्तृणभक्षणात् ।
तृणाहारा सदैवैते हन्यन्ते पशवः कथम् ।।

अर्थात्—महाराज! मुंह मे तिनका दबाने वाले वैरी को भी छोड़ दिया जाता है—उनको भी नही मारा जाता, तो जो

हैं, इसीलिए बाहर नही निकलते। इसके अतिरिक्त मृगया के लिए चलने पर रानी की परीक्षा भी हो जायगी। मालूम हो जायगा कि रानी आपके प्रति कितना प्रेम रखती हैं। आज तक आपने उनकी बात मानी है। वह आपको प्रेम करती होंगी तो एक बात आपकी भी मान जाएंगी। एक बार मृगया की तैयारी करके देख तो लीजिए कि रानी क्या कहती हैं और क्या करती हैं ?

इस प्रकार अनेक बातें कहने-सुनने से अथवा भवितव्य के वश होकर राजा उन लोगो के जाल में फंस गया। उसने सोचा - जाने और न जाने की बात फिर सोचेंगे, एक बार तैयारी करके देखें तो सही कि रानी क्या कहती और क्या करती है ? इस प्रकार विचार कर उसने मृगया की तैयारी करने की आज्ञा दी। उसने अपनी प्रतिज्ञा की भी उपेक्षा कर दी। राजा की आज्ञा के अनुसार तैयारी होने लगी। जो लोग पहले मृगया मे राजा के साथी थे, वे राजा के आस-पास घूमने लगे।

मृगया की तैयारी के समाचार गंगा को मालूम हुए तो वह चकित रह गई। सोचने लगी — इतने दिनो बाद महाराज फिर वन के गरीब जानवरो को सताने के लिए उद्यत हो गए है। जान पडता है, उन्हे अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण नहीं रहा। ऐसा होना सम्भव भी है। राजा लोग भूल जाया करते हैं। अतएव एक बार जाकर महाराज को प्रतिज्ञा का स्मरण करा देना चाहिए।

गंगा, महाराज शान्तनु के पास पहुंची। नम्रता के साथ कहा—महाराज ! आज मृगया की तैयारी कैसी ? क्या

अपनी प्रतिज्ञा निबाहेगी । जिस क्षण आप अपनी प्रतिज्ञा भंग कर देंगे उसी क्षण मुझे अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए आपका महल छोडकर चला जाना पडेगा । आप भूले न होगे, आपने कहा था—मेरु चाहे डिग जाय किन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा से नही डिग सकता । इस प्रकार दृढ़ता के साथ की हुई प्रतिज्ञा और मुझे दिये वचन के विरुद्ध आज आप निर्दोष वन-पशुओ को मारने की तैयारी कर रहे हैं ?

गगा का यह निर्भीक कथन सुनकर राजा विचार में पड गया । पुरानी सब बाते उसके मस्तिष्क मे घूम गई । वह कुछ ढीला पड़ा । लेकिन जब उसने सोचा कि मृगया की तैयारी हो चुकी है । अब अगर मैं नही जाता और रुक जाता हूं तो लोगो का यह कहना पुष्ट हो जायगा कि राजा, रानी का सेवक है । इसके अतिरिक्त मुझे रानी की परीक्षा भी करनी थी । मालूम हुआ कि रानी का स्वभाव ज्यो का त्यो बना है । उसमे तनिक भी परिवर्तन नही हुआ । जब रानी अपना स्वभाव नही बदलती तो मैं भी अपना स्वभाव क्यो बदलूं ?

इस प्रकार लोकोपवाद की कल्पित भीति से और पुरुषत्व के मिथ्या अभिमान से प्रेरित होकर शान्तनु चुप-चाप वहा से चल दिया और मृगया के लिए रवाना हो गया ।

साधारण स्त्री के लिए यह विकट समस्या थी । एक ओर प्रतिज्ञा है और दूसरी ओर पति, राजमहल के सुख और आमोद-प्रमोद हैं । वह किसे छोडे और किसे पकड़े ? मगर गंगा असाधारण स्त्री थी । उसने दुविधा में अपने मन

पशु सदैव तृण ही खाते हैं, उन्हे मारना कैसे उचित कहा जा सकता है ? अतएव आप दीन पशुओ पर चढाई मत कीजिए ।

अधिकार मिल जाने पर मनुष्य को अधिक कार्य करना चाहिए ।

अधिकमधिक कार्यं करोतीति-अधिकारी ।

इसके विरुद्ध अधिकार पाकर जो यह सोचता है कि मेरा कोई क्या बिगाड सकता है और ऐसा सोचकर जो अन्याय पर उतारू हो जाता है, उसके लिए 'अधिकार' 'धिक्कार' बन जाता है ।

शान्तनु का गगा पर जब तक परिपूर्ण अधिकार नही था, तब तक वह उसे ऊंची दृष्टि से देखता था । जब गगा उसकी पत्नी हो गई और उसके पुत्र भी हो गया, इस प्रकार उसका गगा पर पूरा अधिकार हो चुका तो उसे यह अभिमान आ गया कि गगा अब क्या कर सकती है ? इस अभिमान के कारण उसने गगा के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा की भी उपेक्षा कर दी । फिर भी गगा उसे समझाने का प्रयत्न कर रही है ।

गगा ने कहा—महाराज ! आपने मेरी आज्ञा मे रहने की प्रतिज्ञा की थी । मैंने उसी समय कहा था कि पुरुष स्वार्थ के वश मे होकर प्रतिज्ञा कर लेते हैं और स्वार्थ सिद्ध होने पर बदल जाते हैं । क्या आप भी ऐसे पुरुषो की श्रेणी में जाना चाहते हैं ? अगर आप अपनी प्रतिज्ञा भंग करना ही चाहे तो आपकी इच्छा । मगर गगा प्राण देकर भी

प्रिया पुत्र बिन आज महल यह लगता मुझे श्मशान,
सब जय बोलो ब्रह्मव्रतधारी भीष्म की ॥
रानी ने मुझको समझाया नही मानी मैं बात,
हुआ लाभ यह रानी पुत्र सह छोड गई साक्षात ।
अपने ही हाथों से मैंने किया कुठाराघात,
सब........ .... भीष्म की ॥
कुछ दिन चिन्तित रहे राजवी सहचारी समझाय,
राज-काज में लगे न चित्त तो प्रिया पुत्र के मांय ।
किस तरह ले मन बहलाते अपना काल बिताय,
सब........ . ... भीष्म की ॥

महारानी गंगा के चले जाने के पश्चात् राजा आखेट करके वन से लौटा । उसके प्रशंसक प्रशसा के पुल बांध रहे थे । कोई कहता—"आज आपने गजब की वीरता दिखलाई ।'

दूसरा कहता—आखिर तो महाराज क्षत्रिय हैं । क्षात्र तेज सदा सोता नहीं रहता ।

तीसरा कहता—महाराज को यही करना उचित था । आज शरीर मे और मन में नवीन ही स्फूर्ति मालूम होती होगी ।

इस प्रकार की चापलूसी भरी बातें सुनकर भी राजा का चित्त शान्त नही था । भीतर ही भीतर कही कोई डंक मार रहा था । वह अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो चुका है, यह बात उसे भूलती नही थी । उसने रानी की निर्भय बातें सुनी थी । रानी की प्रतिज्ञा की अटलता पर भी उसे विश्वास था । वह आगे आने वाली घटनाओ का चिन्तातुर होकर विचार कर रहा था ।

को उलझने ही नही दिया । जब वह राजमहल मे अकेली रह गई तो मन ही मन उसने निश्चित कर लिया—महाराज ने अपनी प्रतिज्ञा भग की है मगर मैं अपनी प्रतिज्ञा भग नही होने दू गी । मैं जिस महल मे आदर के साथ रही हूं, उसमें निरादरपूर्वक नही रह सकती । मैं सूखे पान की तरह यहा नही पडी रह सकती । मैं विषयभोग की दासी नहीं हू । अतएव मुझे शीघ्र अपने पिता के घर चल देना चाहिए। स्त्री के लिए दो ही स्थान हैं—पति का घर और पिता का घर । जब पति के घर आदर न हो तो पिता के घर के अतिरिक्त और कौन-सा स्थान रह जाता है ?

शान्तनु अपनी प्रतिज्ञा से च्युत हो गया था, लेकिन गगा प्रतिज्ञा पर दृढ थी । गगा भी अपनी प्रतिज्ञा भूल गई होती तो शायद यह कथा ही न रची गई होती । जब तक पति या पत्नी मे से कोई एक ही भूला रहता है, तब तक तो गनीमत रहती है मगर जब दोनो भूल जाते हैं तो स्थिति बहुत खराब हो जाती है ।

गगा पिता के घर जा पहुची । पिता राज जह्नु ने सारा वृत्तान्त सुनकर उसका सम्मान किया और कहा—पुत्री, चिन्ता मत करना । तेरी भावना पति का कल्याण करने की है, इसलिए सब प्रकार मगल ही होगा । दूसरे कुछ भी कहे, हमे तो अपना हृदय टटोलना चाहिए ।

७ : फिर वनवास

पत्नी पुत्र से शून्य महल मे जब आये राजान,
क्या करना औ कहा पर जाना नही शान्ति का स्थान ।

झाने लगे—प्रभो ! आप रानी के जाने से दुखित क्यों होते हैं ? रानीजी को भी तो आपका विचार करना चाहिए था ! परम्परा के अनुसार उन्हें आपकी आज्ञा में रहना चाहिए था । पति की आज्ञा में रहना पत्नी का कर्त्तव्य है । रानी ने अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया । उन्होंने आपकी जरा भी परवाह नहीं की । अगर ऐसी रानी चली गई तो इसके लिए दुःख मानने की क्या आवश्यकता है ? आपकी यह स्थिति दूसरे राजा जान पाएंगे तो आपकी हंसी होगी और उनका साहस बढ जाएगा । अतएव किसी प्रकार की कायरता न धारण करके धैर्य रखिए ।

मित्रों के समझाने—बुझाने से राजा राज्य—कार्य करने लगा । फिर भी उसका मन सदा रानी और पुत्र में ही लगा रहता था । वह यही सोचता रहता कि धर्म अप्रतिबद्धता में है, किसी व्यक्ति विशेष मे नहीं । पुरुष होकर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो गया और स्त्री होने पर भी गंगा ने अपनी कठिन प्रतिज्ञा पाली !

सच तो यह है कि त्याग और वैराग्य के विना प्रतिज्ञा का पालन नही होता । गंगा विषय—भोग मे लिप्त नही थी । भोगो के प्रति उसके हृदय मे एक प्रकार की सहज विरक्ति थी । इसी कारण अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए उसने महान् त्याग किया । उसने सोचा—महाराज अपनी प्रतिज्ञा तोडते हैं तो तोडें, मैं नही तोडूंगी । जो होता है भले के ही लिए होता है । सम्भव है मेरे लिए त्याग का अवसर आ गया हो । ऐसा सोचकर उसने संसार के बड़े से बडे सुख की उपेक्षा कर दी ।

आखिर आते ही वह राजमहल में चला गया। उसकी सम्भावना साकार हो उठी। उसने देखा—महल सूना पड़ा है

दासियों से पूछने पर मालूम हुआ—महारानी अपने पुत्र के साथ चली गई हैं और अपने पिता के घर गई हैं।

यह जानकर शान्तनु के चित्त को कैसा आघात लगा, यह नही कहा जा सकता। वह मन ही मन कहने लगा—'आह गंगा! तुमने गजब किया। मुझे नही मालूम था कि तू बात की इतनी पक्की है! मैंने समझा था, जैसे मुझे विषयभोग प्रिय हैं, उसी प्रकार तुझे भी होंगे। लेकिन मैंने समझने में भूल की। तूने अपनी प्रतिज्ञा के सामने मेरी, राजसम्मान की और सुख की भी अपेक्षा नही की! तू सर्वस्व त्याग कर चलती बनी!'

राजा इस प्रकार दुःखपूर्ण पश्चात्ताप करने लगा। राजमहल उसे श्मशान के समान जान पड़ने लगा। वह कहने लगा—अगर गगा मिल जाती तो मैं भविष्य के लिए फिर प्रतिज्ञा कर लेता। मगर उसने तो प्रतीक्षा ही नहीं की। इसमें उसका दोष भी क्या है? प्रतिज्ञा से भ्रष्ट तो मैं हुआ हूं! मेरे मन में पुरुष होने का अहंकार उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा कि मैं राजा हूं और रानी के कहने में कैसे रहू? इस अहकार ने मुझे कही का न रहने दिया। गगा इतनी निस्पृह है, यह कौन जानता था?

इस प्रकार रानी के चले जाने से राजा को अत्यन्त विषाद हुआ। वह उदासीन रहने लगा। दूसरे लोगो को भी राजा की उदासीनता का पता चला। उसके साथी सम-

इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि शिक्षा के नाम पर कही कुशिक्षा न आ जाय । शिक्षा न देना सन्तान के विकास को रोकना है और कुशिक्षा देना उसके विकास को विपरीत मार्ग पर ले जाना है । मान लीजिए, किसी की आखो पर पर्दा आ गया है । वह अगर डॉक्टर के पास न जायगा तो पर्दा हटेगा नही । पर्दा हटाने के लिए डॉक्टर की सहायता लेनी होगी । पर्दा हटाने के बाद डॉक्टर सावधान कर देगा कि तुम्हारी आखो का पर्दा कुए मे गिराने के लिये नही हटाया गया है । इसलिए हटाया गया है कि तुम रास्ता देख कर चलो और कुमार्ग से बचो । कोई डॉक्टर यह सोचकर आखो का पर्दा हटाने से इन्कार नही कर सकता कि ऐसा करने से यह कुएं मे गिर जायगा ! इसी प्रकार शिक्षा देने का उद्देश्य मनुष्य को सन्मार्ग सुझा देना है । शिक्षक को उचित है कि वह अपने शिष्य को सावधान कर दे कि शिक्षा पाकर तुम्हे अपना अनिष्ट नही करना है, वरन् कुमार्ग से बचकर सन्मार्ग पर चलना है । मगर शिष्य कही कुमार्ग पर न चला जाय, यह सोचकर उसे शिक्षा से वंचित रखना उचित नही ।

आजकल की शिक्षा के विषय मे बड़ी भूल की जा रही है । शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध मे गहराई से विचार नही किया जाता । देखना चाहिए कि शिक्षा नौकरी के लिए है अथवा आत्मा की उन्नति के लिए है ? शिक्षा का उद्देश्य आज नौकरी मिलना मान लिया गया है । अगर अच्छी नौकरी न मिले तो समझा जाता है कि शिक्षा व्यर्थ हो गई । मगर शिक्षा की सफलता नौकरी मे नही है । आत्मिक विकास शिक्षा का प्रधान ध्येय होना चाहिए ।

राजा के मन में आता, अगर गंगा को मना कर ले आऊ तो कैसा रहे ? पर उसे साहस नही हुआ। सोचता—कौन-सा मुंह लेकर गंगा के पास जाऊं। वह मेरे, वायदे पर भी किस प्रकार विश्वास करेगी ? राजा की आखो के सामने गंगा की मूर्ति साकार-सी बनी रहती और रानी के मधुर शब्द उसके कानो मे गूंजा करते थे।

पश्चात्ताप करने से भी पाप कम होता है। भविष्य मे उस पाप-कर्म में प्रवृत्ति नही होती, जिसके लिए घोर पश्चात्ताप किया जाता है। किन्तु अधिकांश लोग यह भूल करते हैं कि वे अपनी भूल को भूल ही नही मानते। यही बहुत बडी भूल है। भूल न होने देना उत्तम है, किन्तु जब भूल हो जाय तो उसे छिपाने का प्रयत्न करना भी हानि-कारक है। रोगी अपना रोग छिपाने का प्रयत्न करेगा तो परिणाम क्या होगा ?

इधर गंगा ने सोचा—मैं पति को त्याग आई हूं और पुत्र को भी साथ ले आई हू। पुत्र राजकुमार है। इसे उसके योग्य शिक्षा मिलनी चाहिए। अगर मैंने उसकी समुचित शिक्षा का प्रबन्ध न किया तो मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत होऊगी। कहा भी है।

माता शत्रु: पिता वैरी येन बालो न पाठित ।

वह माता और पिता बालक के शत्रु हैं। जो अपने बालक को अनपढ रखते है इस नीति–वाक्य से यह ध्वनित होता है कि बालक की शिक्षा की जिम्मेदारी माता पर भी है और पिता पर भी है। दोनो का कर्त्तव्य है कि वह बालक को सुशिक्षित बनावें।

सकता । अपनी जान बचाने के लिए दूसरो का मुंह ताकना मनुष्यता नही, यहा तक कि पशुता भी नही है । पशु भी अपनी और अपने आश्रित की रक्षा करने का पूरा उद्योग करता है । कायरता मनुष्य का बड़ा कलक है । तेजस्वी पुरुष प्राण दे देता है पर कायरता नही दिखलाता ।

मृत्यु कोई अनहोनी वस्तु नही है । वह जीवन मे अनिवार्य प्रसंग है । जो पुरुष मरण–भय को जीत लेता है उसी में वीरता होती है । जो मरने से डरता है उसमे कायरता होगी, वीरता नहीं आ सकती । सच्चा वीर मृत्यु को खिलौना समझता है । वह मरने से नही डरता और जो मरने से नहीं डरता वही सच्चा वीर है । जो मृत्यु का आलिगन करने के लिए तत्पर रहता है उसे मारना किसी के लिए भी आसान नही है । वास्तव मे वही जीवित रहता है जो मृत्यु की परवाह नहीं करता । मरने से डरने वाले तो मरने से पहले ही मरे हुए के समान है । गंगा ने अपने पुत्र को वीरता की ऐसी सुन्दर शिक्षा दी ।

पितृगृह रहते गंगा ने किया पुत्र विद्वान् ।
पवनवेग मामा के द्वारा विद्या मे बलवान ।।
धनुर्वेद आदि शिक्षा मे प्रगटे पूर्ण विधान ।
सब मिल ....भीष्म की ।।

गगा ने अपने पुत्र मे वीरता के ऐसे सुन्दर संस्कार डाले कि किसी भी समय उसमे कायरता न आने पावे । उसने यह भी सिखाया कि शरीर धर्म की रक्षा करने के लिए है, धर्म का नाश करने के लिए नही ।

गगा ने पहले-पहल स्वय ही अपने पुत्र को शिक्षा दी। मातृशिक्षा साधारण चीज नही है। वह बालक मे गहरे सस्कार डालती है। बालक मे धीरता भर देती है। शिवाजी के विषय मे कहा जाता है कि वे राजकुमार नही थे, फिर भी माता की शिक्षा के प्रभाव से उन्होने आश्चर्यजनक वीरता प्रदर्शित की और हिन्दू धर्म के रक्षक कहलाए। माताए चाहे तो आज भी अनेक शिवाजी बन सकते है। लेकिन ऐसा करने के लिए उन्हे अपना स्वार्थ त्यागना पड़ता है। माताएं स्वय अज्ञान के अन्धकार में भटक रही है। वे बालको को नाना प्रकार के भय दिखला कर डरपोक बनाती हैं। ऐसा करके वे समझती है कि चलो, काम निकला। उन्हे मालूम नही कि बालक के कोमल हृदय मे भय के सस्कार कितने गहरे बैठ जाते हैं और किस प्रकार बालक के समस्त जीवन मे उनका प्रभाव बना रहता है! कहा जाता है कि जापान का पाच वर्ष का बालक रात्रि के अधकार में श्मशान मे जा सकता है। लेकिन हमारे यहा चालीस वर्ष का युवक भी ऐसा करने मे भयभीत होगा। कोई कह सकता है कि हमे अपने लड़के को राजा तो बनाना नही है और न युद्ध करने के लिए भेजना है। फिर इस प्रकार की सीख की क्या आवश्यकता है? उन्हे अपने पूर्वजो की ओर ध्यान देना चाहिए। पालित श्रावक के लडके को क्या युद्ध करना था? वह क्या राजकुमार था? फिर उसके पिता ने उसे युद्धकला क्यो सिखलाई थी? जिसे प्रतिष्ठा के साथ जीना है, उसे स्वय अपनी रक्षा करने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। जो आत्मरक्षा नही कर सकता, अपने आश्रित जनो की रक्षा नही कर सकता वह इज्जत के साथ जीवित नही रह

मिलाते हैं। अपने यहां जब प्रार्थना बोली जाती है तो कोई किसी तरफ खीचता है, कोई किसी तरफ। कोई किसी स्वर में गाता है, कोई किसी स्वर में। लेकिन वे बालक पादरी के स्वर में ही स्वर मिलाते हैं। इसका कारण यही है कि अपने यहां इस विषय की शिक्षा नही दी जाती और उन्हें शिक्षा दी जाती है। भीलो मे कई लडके लिख-पढकर अमेरिका भेजे गये और शेष यही है। प्रतिवर्ष उनकी सख्या बढ़ रही है।

क्या आपके यहा ऐसा होता है ? आपके यहां दूसरों को गिराने वाले बहुत मिल जाएगे, लेकिन गिरे हुए को उठाने वाले, बिगडे को सुधारने वाले कोई विरले ही होगे।

गंगा ने गंगानन्दन को अच्छी शिक्षा दी। गांगेय राजपुत्र था। उसमें स्वाभाविक तेज था और फिर उसके मामा पवन-वेग ने उसे धनुर्विद्या मे कुशल बना दिया था। इसलिए अब उसके तेज का कहना ही क्या था ? वह बड़ा वीर भी था। वह ऐसा ओजस्वी और तेजस्वी बालक निकला कि कोई भी विद्याधर—बालक उसकी समता नही कर सकता था।

लडको मे और बढ़े-बूढों में भी एक दुर्भावना होती है, जिससे लोग किसी विशिष्ट गुणवान् की समता न कर सकने के कारण उसे दूसरो तरह से गिराने की ही चेष्टा करते हैं। वह दुर्भावना ईर्ष्या कहलाती है। गंगकुमार के प्रभाव को सहन न कर सकने के कारण विद्याधर बालक उसी प्रकार दुःखी होने लगे जैसे सिंह के बालक के सामने हाथी का बच्चा दुःखी होता है। वे अपने माता-पिता से नित्य ही गगाकुमार की झूठी शिकायतें करने लगे। वे

इस प्रकार की शिक्षा दे चुकने के पश्चात् गंगा ने अपने भाई पवनवेग से कहा—आप विद्या मे श्रेष्ठ माने जाते हैं लेकिन आपकी श्रेष्ठता इसमें है कि आप अपने भानजे को भी अपने ही समान बना लें। आप ही अपने को इसका माता पिता समझे और इसे विद्या मे पारगत करें।

पवनवेग ने कहा—गगा बहिन, तुमने मुझे बहुत सुन्दर काम सौंपा है। मैं उन मूर्खों मे नही हूं जो अपनी विद्या नष्ट हो जाने देते हैं मगर दूसरो को नही सिखलाते। मैं तो किसी योग्य शिष्य की खोज मे ही था। अतएव तुमने मुझे प्रिय काम सौंपा है।

> सिंहबाल से हस्ति-बाल ज्यों पाता है बहुत्रास।
> गगानन्दन से भी त्यो सब नन्दन हुए उदास॥
> घर झगड़े को देख सतीजी किया जङ्गल मे वास।
> सब मिल ········· ····· भीष्म की॥

बालक मे जैसे सस्कार डाले जाए, पड सकते है। गंगा की शिक्षा से गगकुमार मे भी वीरता के सस्कार पड़े। बचपन के सस्कारो के सम्बन्ध मे मैंने एक घटना सुनी थी। वह घटना उसी गांव की है, जिसमे मेरा जन्म हुआ था। वह इस प्रकार है—

उस ग्राम (थादला) में ईसाइयो ने एक मिशन-हाउस खोला है। उसमे ईसाई लोग भीलो के लड़को को ईसाई बनाकर रखते हैं। वहां उन बालको पर ऐसे सस्कार डाले जाते हैं कि जैसा पादरी बोलता है वैसा ही वे लड़के भी बोलने लगते हैं। वे पादरी के गाने में ही अपना स्वर

वन की शिक्षा देना चाहिए। जो होता है वह अच्छे के लिए ही होता है। यहां के लोगो की शिकायत भी इस वालक की भलाई के लिए ही सावित होगी। कुछ अच्छा होनहार है, शायद इसी कारण यहां के लोग शिकायत कर रहे हैं। लोगों को सत्य-असत्य का निर्णय नही करना है सिर्फ विद्याधर होने का अभिमान जताना है। उन्हे सोचना तो यह चाहिए था कि हमारे वालक अगर इतने कुशल नही है तो गंगकुमार से कला सीखें। मगर उन्होने दूसरा ही रास्ता अख्तियार किया है। वह गंगकुमार से उल्टा द्वेष रखते हैं। खैर, कुछ भी हो। अब मुझे यहा से चल कर उसी वन में रहना चाहिए जहां महाराज से प्रथम भेंट हुई थी। वहा रहने से किसी प्रकार कलह न होगा, शातिपूर्वक जीवन व्यतीत होगा और वालक प्रकृति से सर्वोत्तम शिक्षा ग्रहण कर सकेगा।

गगा ने अपना विचार महाराज जह्नु के सामने प्रकट कर दिया। वह यद्यपि गंगकुमार के पक्ष में थे फिर भी रोजाना कलह से कुछ-कुछ अकुलाए भी थे। अतएव ऊपर से तो उन्होने कहा—'वेटी, यहां रहना क्या बुरा है? जगल में रहने की आवश्यकता क्या है? मगर मन मे सोचा—अगर ऐसा हो तो हर्ज भी क्या है? फिर वह कहने लगे—क्या तुम्हे यह घर अच्छा नही लगता? गगा ने कहा—पिताजी जहा मेरा जन्म हुआ है, वह घर अच्छा क्यो नही लगेगा? फिर भी मेरा विचार यही है कि आपको मेरे सम्बन्ध मे किसी प्रकार की चिन्ता नही करनी चाहिए।

इस प्रकार वातचीत होने के वाद जह्नु ने कहा—अगर तुम्हारी इच्छा है तो उसी महल मे रहो। मैं भी समय-समय

कहने लगे—अगर गंगकुमार यहां रहेगा तो हम नही रहेंगे। शिकायत करने वाले बालको के माता-पिताओ ने असलियत की जाच तो की नही और सोचने लगे कि यह उपद्रवी बालक कहां से आ गया है ! वे लड़कों की बातो मे आकर गंगकुमार के विरोधी बन गए । कहने लगे—लड़के प्रतिदिन शिकायत करते हैं और सभी लडके शिकायत करते हैं, ऐसी स्थिति मे उनकी शिकायत झूठी कैसे हो सकती है ?

ऐसा तर्क प्राय काम में लाया जाता है। मगर सत्य के विरुद्ध बोलने वाले चाहे जितने आदमी हो और सत्य का पक्ष लेने वाला एक ही क्यो न हो, फिर भी सत्य तो सत्य ही रहेगा। जहाज के सभी लोग अरणक के विरुद्ध हो गये थे, फिर भी अरणक ने सत्य का त्याग नहीं किया । वह तो यही सोचता था कि अन्त मे सत्य की ही विजय होती है ।

गंगकुमार सच्चा और सीधा था फिर भी बहुत से लड़के और उनके माता-पिता उसके विरुद्ध शिकायत करने लगे और राजा से कहने लगे कि भूचर-बालक हमारे खेचर बालकों को कष्ट देता है । अगर आप इसे रखना ही चाहते हैं तो घर में ही रखिए ।

गगा के पिता और भाई सोचने लगे—लोग असलियत का पता लगाते नही, सोचते-समझते नहीं और शिकायत करने को तैयार हो जाते हैं । भाई-बन्दो की बात है। अब क्या उपाय करना चाहिए ?

गंगा को भी इसका पता चल गया । उसने सोचा—शायद बालक की यहां शिक्षा समाप्त हो चुकी है । इसलिए इसे

नीचे जाने पर दु:ख मानने की क्या आवश्यकता है ? संसार में एक अवस्था के वाद दूसरी अवस्था होती ही रहती है। अगर उसमे राग-द्वेष का सम्मिश्रण हो गया तो वह सुख-दु:ख देने वाली होगी। अगर राग-द्वेष का सम्मिश्रण न होने दिया और प्रत्येक अवस्था मे समभाव रखा गया तो कोई भी अवस्था दु:ख नहीं पहुंचा सकती। दु:ख से बचने का यही एकमात्र उपाय है।

गगा सोचती है—सीता और द्रौपदी आदि सतियां इस तरह के हिंडोले में बहुत झूली हैं। फिर भी उन्होने दु ख नही माना तो मैं क्यो दू:ख मानूं। दु ख को दु ख मानने र ही दु ख दु:खी वना सकता है। अगर दु:ख को दु:ख ही ा माना जाय तो वह क्या विगाड़ सकता है ?

जव ससार का स्वभाव और स्वरूप ही यह है तो सुख दु ख स्वरूप हिंडोले के पलडे को ऊपर-नीचे आते जाते समय सुख-दु.ख का संवेदन करने की क्या आवश्यकता है ? आप ससार को एक-सा रखना चाहते हैं, लेकिन ऐसा कदापि नहीं हो सकता। ससार सदा एक रूप रह ही नही सकता। दूसरे की वात जाने दीजिए, राम भी इस ससार को एकरूप न रख सके तो आपकी क्या विसात है ? फिर भी लोग समझते हैं कि ससार मानो हमारे वल-बूते पर ही चल रहा है। ऐसी ही बातो को देखकर नरसी मेहता ने कहा—

हुं करू हु करु एज अज्ञानता,
शकटनो भार ज्यो श्वान ताणे।

इस प्रकार का अभिमान वृथा है कि संसार मुझ से ही चल रहा है। भरी हुई गाड़ी के नीचे चलने वाला कुत्ता अगर

पर वहां आया करूंगा। किसी प्रकार की चिन्ता मत करना और जब भी चाहो, यहां आ जाना।

पिता की आज्ञा पाकर गंगा प्रसन्न हुई। वह उसी वन मे रहने लगी, जिसमें पहले रहती थी।

८ : भीष्म की शिक्षा

निज विद्या की करो साधना रखकर पूरा ध्यान,
नैसर्गिक वस्तुएं देखकर लेना उनसे ज्ञान।
ध्यान लगाकर वन मे देखे चारण मुनि गुणवान्,
सब मिल ………… ……………… ………भीष्म की ॥

गंगा अपने पुत्र को साथ लेकर फिर वन-वास के लिए आई। ऐसे समय गंगा का हृदय विह्वल हो सकता था कि मैं राजा की पुत्री हू। राजा की पत्नी महारानी हूं। फिर भी आज मुझे वन-वास करना पड रहा है! मगर कौन जाने गंगा का हृदय किस धातु का बना था कि उसे न यह विचार आया और न दु.ख ही हुआ। गगा शान्त, प्रसन्न और सन्तुष्ट थी। उसके चेहरे पर व्याकुलता, वेदना या विवशता की छाप तक लक्षित नही होती थी।

वास्तव मे जो जानता है वह किसी भी स्थिति में अपने आपको दु खी नही मानता है। वह समझता है कि संसार की सम्पदा तो हिंडोले की तरह परिवर्त्तनशील है। वह आती और जाती रहती है। इसके लिए दु.ख करने की क्या बात है? जहां आना-जाना न हो वह ससार ही कैसा? ऐसी स्थिति मे संसार रूपी हिंडोले में ऊपर चढ़ने पर सुख और

मुझसे कह रही है—तूने ही अपना घर नही त्यागा है वरन् मैं भी अपने उद्गमस्थान—पर्वत को छोडकर आई हू। लेकिन ऐसा करने से मैं कल्याणी हुई हू या अकल्याणी, इस वात पर विचार कर। मैं अपने मैके से चलकर पति (समुद्र) के पास जा रही हू। मार्ग मे लोग मुझे 'नदी' कहते है। जो लोग मुझे 'नदी' कहते हैं, उन्हे मैं आनदित करती हुई अपने ससुराल को जा रही हू।

गागेय सोचता है—इस नदी को तरह मैं भी घर त्याग कर वन मे आया हू। नदी जिस प्रदेश मे होकर जाती है उसे वह सजल, हरा—भरा और सम्पन्न वनाती जाती है। तो क्या वन में रहते हुए मुझे भी कोई विशिष्ट कार्य नही करना चाहिए ? मैं भी तो इसी की भाति घर त्यागकर यहा आया हू।

नदी एक धारा से वह रही है। इसकी धारा दूसरी ओर नही जाती। ऐसा करके नदी हमे सिखाती है कि मेरी ही भाति सदा एक धारा रखो। मेरी माता की भी नदी की तरह एक ही धारा है। उसकी धारा केवल पिता की ही ओर है लेकिन मुझ मे कितनी धाराए हैं ? नदी से मुझे सीखना होगा कि मेरे जीवन की भी एक ही धारा रहे।

मेरे यहा नदी के किनारे आने से पहले नदी जैसा शब्द कर रही थी, उसी प्रकार का शब्द मेरे आने के वाद भी कर रही है। जव मैं यहा से चल दूगा तव भी यह ऐसा ही शब्द करती रहेगी। इसे किसी को खुश करने की चिन्ता नही है, निरन्तर कार्य करते रहना इसका स्वभाव है।

ससुराल जाने के मार्ग मे बाधा उपस्थित करने वाले

अभिमान करता है कि मैं गाड़ी को खीच रहा हू तो आप क्या कहेगे ? जैसे कुत्ते का यह अभिमान मिथ्या है, उसी प्रकार ससार को अपने आधार पर चलने का अभिमान करना भी मिथ्या है । ऐसा अभिमान करने वाले न रहेंगे, फिर भी संसार इसी तरह चलता रहेगा । सारे ससार को कोई अपनी इच्छा के अनुसार नही ढाल सकता । ऐसी स्थिति में इष्ट संयोग मिलने पर सुखी और अनिष्ट सयोग पाकर दुःखी नहीं होना चाहिए ।

गगा इस तथ्य को भली-भाति समझती थी । अतएव जङ्गल मे रहकर भी उसके मन मे विषाद या खेद नही हुआ । वन में पहुंच कर वह सोचने लगी—"वन मे कैसा आनन्द है ! न किसी प्रकार का कलह है न क्लेश !" जो लोग अपनी दृष्टि गगा की दृष्टि के समान मङ्गलमय बना लेते हैं, उनके सामने अमङ्गल कभी आता ही नही ।

गंगा ने गागेय से कहा—यहा तुम्हारा दूसरा कोई गुरु नही है । तुम्हे आप ही अपना गुरु बनना होगा । अपना विकास आप ही करना होगा । तुमने जो विद्या प्राप्त की है उसे यहा रहकर स्वतन्त्रतापूर्वक विकसित करो ।

गांगेय ने कहा—अच्छा माता, मैं ऐसा ही करूंगा ।

अपने हाथ मे धनुष-बाण लेकर गागेय वन देखने चला । वन मे उसने झाड, फूल, फल मृग, नदी नाले आदि देखे और वह सोचने लगा कि यह सब मुझे क्या शिक्षा देते हैं ? वन मे फिरता-फिरता वह एक नदी के किनारे बैठ गया । उसने नदी के सम्बन्ध मे विचार किया । वह सोचने लगा -अविश्रान्त गति से वहती हुई यह नदी मानो

गंगा—बेटा, तुमने मेरे चित्त मे क्या कभी उदासीनता या दुःख देता है ?

गंग०—जब आप राजमहल में होंगी तो आपके शरीर पर उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषण सुशोभित होते होगे। बहुत से दास और दासिया सेवा के लिए प्रस्तुत रहती होगी। यहां केवल लज्जा की रक्षा के लिए ही शरीर पर वस्त्र है और आभूपण तो कोई है ही नही। क्या यह दुःख नहीं है ?

कल्पना कीजिए, आपके सामने सीता के दो चित्र हैं। एक विवाह के समय का चित्र है, जिसमे वह सुन्दर वस्त्रो और आभूषणो से सजी हुई है। दूसरा चित्र वन जाते समय का है। इस चित्र मे सीता के शरीर पर न तो बहुमूल्य वस्त्र है, न आभूषण हैं। आप इन दोनो चित्रो मे से किसे पसन्द करेंगे ? आपको विवाह के समय का चित्र ही अच्छा लगेगा। लेकिन याद रखना कि सीता अगर शृङ्गार करके राजमहल मे बैठी रहती तो आज सती सीता के रूप मे उसे कोई याद न करता। आज इतने समय बाद भी सीता की जो प्रतिष्ठा है वह उसके त्याग के कारण ही है। गगा क्या उत्तर देती है, यह देखिए।

गगकुमार के कथन के उत्तर में गगा ने कहा—तू अभी अज्ञान बालक है। गहनो और कपडो के अभाव मे तू मुझे दुःखी समझता है, यह तेरी भूल है। अगर मैं इनके लिए दु खी होती तो स्वेच्छा से इनका त्याग ही क्यो करती ? मुझे किसी ने राजमहल से निकाला नही है। मैं स्वयं चली आई हू। और इच्छा होने पर आज भी सब सामग्री प्राप्त

पत्थरो का—चट्टानों का—यह विरोध करती है । यह कहती है—"मेरे मार्ग से हट जाओ । मुझे जाने दो । क्षण भर भी ठहरने का मुझे अवकाश नही है ।" कैसी सतत प्रवृत्तिशीलता है ! कितनी व्यग्रता है ? मनुष्य अगर इसी भावना के साथ कार्य मे जुटे पड़े तो सफलता मे क्या सन्देह है ?

इस प्रकार नदी तथा वन की अन्य वस्तुओं से शिक्षा लेता हुआ गागेय अपने स्थान पर लौट गया । वह सोचने लगा—जैसी सुन्दर और निर्दोष शिक्षा इस वन से मिलती है, वैसी तो माता से भी नही मिली थी ।

गगा ने अपने पुत्र को आते देखा । उसकी सूक्ष्म दृष्टि से यह बात छिपी न रही कि आज मेरे पुत्र मे नित्य की अपेक्षा कुछ ज्यादा तेज है । वह पुत्र के सामने गई । लेकिन गगा को देखते ही गगकुमार कुछ उदास हो गया । यह देखकर गगा ने उससे पूछा—पुत्र ! तुम अभी-अभी प्रसन्न होते आ रहे थे और यकायक उदास क्यो हो गए ?

गांगेय ने कहा—माता, मुझ पर आपका उत्कट स्नेह है । माता के स्नेह और अनुग्रह का बदला नहीं चुकाया जा सकता । बदला चुका देने का विचार करना भी मूर्खता और कृतघ्नता है । माता के असाधारण ऋण को तो माथे पर ओढे रहने मे ही आनन्द है । फिर भी माता की सेवा तो करनी ही चाहिए । पुत्र का यह धर्म है—कर्त्तव्य है । मैंने सुना था कि आप राजरानी हैं । लेकिन समय की कैसी गति है कि आपका सारा सुख चला गया है और आपको वनवास भोगना पड रहा है । मैं आपके कष्ट को दूर नहीं कर रहा हूं । इसी विचार से मुझे उदासी हुई है ।

सभी धर्म करते हैं, लेकिन सकट के समय में धर्म पर दृढ रहने वाला धर्मात्मा कहलाता है।

गंगकुमार कहता है—माता, इसलिए मैंने नदी से यह शिक्षा ली है कि सकट के समय मे भी अपनी धारा एक-सी बहती रहनी चाहिए। मैंने तुलना की तो आपकी और नदी की धारा एक-सी है।

गगकुमार के कथन पर आप भी विचार कीजिए और सकट के समय भी धर्म पर दृढ रहिए। ऐसा होने पर ही आप धर्म का पालन कर सकेंगे।

गगा ने कहा—पुत्र ! तूने अच्छी शिक्षा ली है। नदी की तरह और भी बहुत-सी चीजें हैं, जिनसे उत्तम शिक्षा मिलती है। तू उनसे मिलने वाली शिक्षा को हृदय मे स्थान देना।

बालक को प्रोत्साहन देने से उसका उत्साह उत्तरोत्तर बढता है। निरुत्साह बनाने से बालक का उत्साह क्षीण होता चलता है और उसकी कार्य करने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

नदी की भाति वृक्षो से भी बहुत शिक्षा मिलती है मैंने एक पंजाबी को गाते सुना है—

मन ! वृक्षन की मति ले रे !
काटन वाले से द्वेष नही कछु।
सीचन वाले से न स्नेह रे ॥

वृक्ष काटने वाले से द्वेष नही करता और सीचने वाले पर स्नेह नही करता। वह दोनो को समान रूप से छाया देता है। इसी कारण महाभारत मे वृक्ष को अजातशत्रु कहा

हो सकती है। फिर भी मैं उसे नही चाहती। मैं जिसे चाहती ही नही, उसके अभाव मे दुःखी क्यो होऊंगी ? गहने-कपड़े नारी का सच्चा आभूषण नही हैं। नारी का श्रेष्ठ आभूषण शील है। मैं शील का पालन करके अपने को धन्य मानती हू और तू समझता है कि मैं दुःखी हूं।

गगा का कथन सुनकर गगकुमार मौन रहा। उस सिर्फ यही कहा– वास्तव मे मैं भूला हुआ था, जो तुम्हे दुःखी मान रहा था। अब मैं ऐसा कभी नही कहूंगा।

गंगा ने कहा—कहने की ही बात नही, बात सोचने की भी है। ऐसा न कहना ही पर्याप्त नही है वरन् ऐसा सोचना भी नही चाहिए। बेटा, जड़ शृङ्गार को शृङ्गार मत समझ। आत्मा को शील से सिगारना ही सच्चा शृङ्गार है। अच्छा, अब यह बता कि तू कहा गया था और जहा गया था, वहां से क्या लाया है ?

गग०—आपने ही तो कहा था कि प्रकृति से शिक्षण ग्रहण कर। सो मैं प्रकृति से शिक्षा लेकर आया हू।

गगा—ठीक है, पर मुझे तो बता कि क्या शिक्षा लेकर लौटा है ?

गंग०– एक तो आपकी शिक्षा है और दूसरी वन मे जो वेगवती नदी बहती है, उसकी शिक्षा है।

वर्षा ऋतु मे तो सभी नदी-नाले बह निकलते हैं, लेकिन जेठ के महीने मे भी नदी बहती रहती है, उसी की कद्र होती है। गंगा और यमुना जेठ मास मे भी बहती रहती है इसी-लिए उनकी कद्र की जाती है। इसी प्रकार अच्छे समय मे तो

रहो तो दुःख से छुटकारा पा जाओगे। तुम्हारे दुःख का कारण यही है कि तुम सुख मागते फिरते हो।

जब पेड़ भी दूसरो को इस प्रकार सुख पहुचा सकता है तो आप क्या दूसरो को सुख नही दे सकते ? जब आप वृक्ष रहे होगे, तब आपने भी यही किया होगा। मगर आप का विकास हो गया है—आपको वृक्ष की अपेक्षा अधिक विकसित चेतना, शरीर और वाणी प्राप्त हुई है, इस कारण आप स्वार्थ मे डूब गये हैं। आप किसी को अपनी छाया भी नहीं देना चाहते ! यही नही, आप ज्यो-ज्यो बडे होते हैं, दूसरो की छाया छीन कर अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं !

आपके पूर्वज कितने रुपये कमाते थे और आज कितने कमाये जा रहे हैं ? एक सज्जन कहते थे—पहले के लोग अगर पच्चीस रुपये कमा लेते थे तो समझते थे कि अच्छी कमाई हो गई। लेकिन आज तो पच्चीस रुपयो की कोई गिनती ही नही है। पच्चीस रुपयो मे साधारण काम भी नही निकलता। इसका कारण यही है कि आपने अपनी आवश्यकताए बेहद बढा ली हैं। यही कारण है कि आज बड़े-बड़े कारखानो से भी लोगो को सन्तोष नहीं है, जब कि पुराने लोग थोडे में ही सन्तुष्ट हो जाते थे।

वृक्ष ने उस आदमी से कहा—हमारा आधार आकाश-वृत्ति है। आकाश से पानी बरस गया या पृथ्वी से पानी मिल गया तो बस उसी से हमारा काम चल जाता है। इसके अतिरिक्त हमारा और कोई आधार नही है। लेकिन मैं देने को सदैव तत्पर रहता हू। मेरे पास जब फल होते हैं तो देवें मे कमी नही रखता। समस्त फल दूसरो को ही देता हूं। अपने

है । वृक्ष किसी को अपना शत्रु मानता ही नहीं है । वृक्ष से क्या सीख ली जा सकती है, यह बात एक दृष्टान्त द्वारा समझना सुगम होगा ।

कल्पना कीजिए, एक आदमी किसी वृक्ष के पास से उदास चित्त से जा रहा था । उस वृक्ष के अधिष्ठाता देव ने उसे अपने पास आने को कहा । उस आदमी ने कहा—मैं अपनी चिन्ता मे जा रहा हूं । तुम्हारे पास आने का मुझे समय नहीं है । अधिष्ठायक या मान लो कि वृक्ष ने उसे कहा—जाते तो हो ही, एक बात मेरी सुनते जाओ । उस आदमी ने उत्तर दिया—मैं बहुत आदमियों की बात सुन चुका हू । मुझे कोई लाभ नही हुआ । वृक्ष ने कहा—अभी तक तुमने स्वार्थी लोगो की बात सुनी है । एक बात मेरी भी सुन लो ।

इतना आग्रह देखकर वह आदमी वृक्ष के पास गया । वृक्ष ने पहले तो उसे फल दिये, जिन्हें खाकर वह प्रसन्न हुआ । फिर उसने आदमी से पूछा—तुम्हें सुख चाहिए न ?

आदमी ने कहा—हां,सुख के लिए ही तो भटक रहा हूं ।

वृक्ष—तो देखो, सुख देने मे सुख है, सुख लेने में सुख नही है । सुख मांगने से सुख नही मिलता है । लोग सुख की भीख मागते फिरते हैं, सुख के लिए भिखारी बने फिरते हैं, इसी कारण उन्हे सुख नही मिलता । हम वृक्षो को ही देखो न । हम किसी से सुख की याचना नहीं करते । चाहे कोई हमे काटे या सींचे, हम दोनों पर समभाव रखते हैं । दोनो को समान भाव से छाया देते हैं । इसलिए हम तुम्हारी तरह दुःखी नही हैं । अगर तुम दूसरो को सुख देने मे लगे

प्राण' देता है, तब आप दूसरे को जहर के समान कटुक वचन क्यों सुनाते हैं ?

कई लोग कहते हैं कि मीठा बोलना कपट है। मगर कपट तो तब कहा जा सकता है जब मन में कुछ और हो तथा वचन से कुछ और कहे। सही बात ज्यो की त्यो कह देना कपट नही है। मगर सही बात मधुर शब्दो मे कही जा सकती है। उसके लिए कटुक शब्दो की क्या आवश्यकता है ? वाणी मनुष्य की कसौटी हैं। मनुष्य की महत्ता और हीनता, शिष्टता और अशिष्टता वाणी में तत्काल झलक जाती है। अतएव सस्कारी पुरुषो को बोलते समय बहुत विवेक रखना चाहिए।

वृक्ष कितना सहनशील है ! सर्दी–गर्मी आदि को धैर्य के साथ सहन करता है और स्वय जहर खाकर अमृत देता है। आप मकान मे बैठे हैं, उसमे लगी हुई लकडी कहा से आई है ? आपका झाडो के बिना कान नही चलता। फिर भी कभी सोचते हैं कि हम भी झाड़ से कुछ सीखें !

वृक्ष ने उस चिन्तातुर पथिक से कहा—"तुम निराश मत होओ। मैंने जो कहा है उसे अमल मे लाओ। अच्छी से अच्छी औषध भी अमल में लाये बिना लाभ नही पहुंचाती। मैं कहता नही फिरता, करके दिखलाता हू और लोग कहते हैं पर करते नही। इसी कारण मैं दु खी नही हूं और लोग दु.ख की गठरी बाधे फिरते हैं।

आप भी जो सुनते हैं उसे सुनते ही रहेगे या कुछ करके भी दिखलाएगे ? केवल सुनने से कुछ न होगा। उसे सफल

काम मे एक भी फल नही लेता। जब फल नही होते तब भी थके-मादे पथिको को छाया देता हू। सध्या समय प्रतिदिन आश्रय खोजने के लिए आये हुए पक्षियो को अपनी गोद में छिपा लेता हू। इस प्रकार मैं अपना सर्वस्व देने के लिए सदैव उद्यत रहता हू।

वृक्ष कितना उपकारी है! आजकल तो जङ्गल ही उजाड़े जा रहे हैं। लेकिन वृक्षो को नष्ट करने से मानव-समाज की भलाई नही हो सकती। आजकल के वैज्ञानिको की मान्यता के अनुसार भी मनुष्य की छोडी हुई कार्बोलिक वायु को, जो जहरीली होती है, वृक्ष ग्रहण करते हैं और बदले मे ऑक्सिजन वायु-प्राणवायु, देते है। अर्थात् वृक्ष रोग खीचकर स्वास्थ्य देते हैं। ऐसे उपकारी पेडो को नष्ट करने पर स्वास्थ्य अच्छा कैसे रह सकता है ?

जो वृक्ष को काटता है उसे भी वह छाया देता है, पर आप अपने विषय मे सोचिए कि आप क्या करते हैं ? आप किसी को कटुक वचन तो नही कहते ? नम्रतापूर्वक बोलते हैं? नम्र वचन से जो काम हो सकता है उसके लिए कठोर वचन कहना कितना अनुचित है ? मीठे वचनो की कोई कमी तो है नही। फिर कठोर और कष्टकर वचन कहने से क्या लाभ है ? कहावत है—'वचने का दरिद्रता ?' तुलसीदास ने कहा है—

तुलसी मीठे वचन ते सुख उपजे चहुं ओर।
वसीकरण इक मत्र है, तज दे वचन कठोर॥

मीठे वचनो से सब को सुख होता है। जब वृक्ष भी किसी को जहर नही देता, वरन् दूसरो का जहर लेकर उन्हे

विहीन चित्त में धर्म की भावना थी। इसके धर्मभावना प्रताप से वह वन मे भी आनन्दपूर्वक रहती है। ऐसी वीरता जिसमें होती है, वही धर्म का पालन कर सकता है।

गंगा सोचती थी—और लोग तो धोखा दे सकते हैं मगर जंगल धोखा नही दे सकता। यही कारण है कि महापुरुष सब कुछ त्यागकर जगल में रहते है—वे अरण्य को ही शरण्य मानते हैं।

जितने भी महापुरुष हुए हैं, प्रायः सभी ने गृह त्याग कर वन का आश्रय लिया है। भगवान् महावीर ने भी वन का आश्रय लिया था। लेकिन आज जंगल बर्बाद किये जा रहे हैं और शहर आवाद किये जा रहे हैं।

शहर के संकीर्ण स्थान मे अत्यधिक आदमियो के रहने के कारण स्वास्थ्य की कितनी हानि होती है? अगर आपके शरीर का सारा रक्त एक ही जगह इकट्ठा हो जाय तो कितनी हानि होगी? जहां ज्यादा आदमी रहते हैं वहीं ज्यादा पाप भी होता है। जितने लुच्चे-लफगे और शराबी बम्बई और कलकत्ता आदि बडे शहरो मे मिलेंगे, देहातो मे नही मिल सकते।

गंगकुमार ने नदी और वृक्ष से जो शिक्षा ली है, उसका उल्लेख किया जा चुका है। एक दिन गगाकुमार वन से उदास लौटा। गगा ने प्रेमपूर्वक पूछा—बेटा, आज तुम उदास क्यो हो?

गंग०—आज जंगल में मैंने बड़ा आश्चर्य देखा है।

गंगा—क्या आश्चर्य देखा?

करने से ही फल प्राप्त होगा। मैं जब सुनूंगा कि अमुक के मे जो झगडा था, वह मेरे व्याख्यान से शान्त हो गया है, त यह समझूंगा कि मेरा व्याख्यान देना और आपका व्याख्य सुनना सफल हुआ है, अन्यथा कैसे माना जा सकता है?

वृक्ष का कथन सुनने से उस पथिक को नई समझ गई। मानो वह अब तक अन्धकार में भटक रहा था औ अचानक प्रकाश दिखाई दे गया।

गगकुमार कहता है—माता, मुझे वृक्ष से भी ऐसी शिक्षा मिली है।

गग—बेटा, वृक्ष से मिलने वाली शिक्षा का तो कहना ही क्या है। मुनियो को शास्त्र मे जो शिक्षा दी गई है, उसमें एक बात यह भी है कि उन्हे वृक्ष के समान बनना चाहिए। वृक्ष दूसरो के आघात सहकर भी उनका कल्याण ही करता हैं।

हम मुनि हुए हैं, अगर वृक्ष की तरह आघात पहुंचाने वाले का कल्याण न कर सके तो फिर मुनि कैसे?

इस प्रकार गगाकुमार वन से मिलने वाली शिक्षा क वर्णन गगा के सामने करता है और गगा उसे पुष्ट करती जाती है।

अगर गगा मे सांसारिक भोग—विलास की कामना होती तो प्रथम तो वह पति का घर न छोडती, कदाचित् आवेश में आकर छोड दिया होता तो पिता के घर रह कर भी मौज कर सकती थी। कदाचित् दोनों घर छूट जाते तो वन में जाकर उसे रोना आता। मगर गगा के निर्मल और वासना-

को दुःखी मानता है, वह बातें तो आम के गुण हैं। सभी मानते हैं कि मनुष्य को जगद्वन्द्य बनना चाहिए। अब तू विचार कर कि आम जगद्वन्द्य है या बंबूल ? जगत् उसी को वदना करता है जो जगत् के आघात सहन करता हुआ भी जगत् के उपकार मे ही अपना सर्वस्व लगा देता है। आम यही करता है। तुझे भी ऐसा ही करना चाहिए। आम और बबूल मे क्या अन्तर है यह जानने के लिए सोचना चाहिए कि थका हुआ पथिक दोनो मे से किसके पास जायगा ? किसकी छाया का आश्रय लेगा ? वह आम के पास ही आयगा, क्योकि उसके नीचे काटे नही होते, उसकी छाया गहरी होती है और ऊपर पके फल होते है तो वह फल भी देता है। फल न हो, मजरी हो तो वह सुगन्ध देता है। उसके नीचे बैठने वाले को भ्रमर अपनी गुंजार सुनाते हैं। कोयल अपनी मधुर ध्वनि सुनाती है। इस प्रकार वहां पहुंचकर पथिक प्रसन्न हो जाता है, उसकी थकावट हट जाती है और उसमें नवीन उत्साह तथा स्फूर्ति आ जाती है। इन्ही गुणो के कारण आम वन्दनीय समझा जाता है। जो वन्दनीय बनना चाहता है उसे आघातो से नही डरना चाहिए। आघातो से डरने वाला कुछ भी नही कर सकता। बेटा, तू आम से यह शिक्षा ले। आघात सहकर भी जगत् का उपकार कर। आघात से भयभीत मत हो।"

गंग०—माता, मैं समझ गया। वास्तव मे आपने बहुत सुन्दर विवेचन किया है।

गंगा ने जो शिक्षा दी है, वह सिर्फ गगकुमार के लिए नही है—सभी के लिए है। मिश्री किसी एक के लिए मीठी नही होती—जो उसे खाता है उसी का मुंह मीठा हो जाता

गंग०—मैंने एक फला-फूला ग्राम का वृक्ष देखा। उस के पास एक बबूल का पेड था। मानो दोनो आपस में बात कर रहे थे। उस ग्राम के वक्ष को देखकर मुझे तुम्हारी याद ग्रा गई।

गगा—लेकिन मेरी याद ग्राने से तू उदासीन क्यो हुग्रा?

गंग०—आम्रवृक्ष की हालत से तुम्हारी हालत मिलती-जुलती है। लोग आम्र-वृक्ष को तोड लेते हैं और ऊपर से उसे लकडी-पत्थर भी मारते है। दूसरी ओर बबूल था, जिसे कोई छूता भी नही था। मैंने उन दोनो को देखा, जैसे आपस में दोनो यही बातें कर रहे थे।

गंगा—बेटा, तुझमे विवेक ग्रौर कल्पना तो है परन्तु अभी उसका पूरी तरह विकास नही हुग्रा है। ग्रच्छा बता तो सही, तेरी कल्पना के अनुसार उन दोनो मे क्या बातचीत हो रही थी?

गंग०—ग्राम, बंबूल से कहता था—'देखो भाई, मैं कितना दु:खी हूं। मैं सबका उपकार करता हूं, फिर भी लोग मुझे मारते हैं। लेकिन तुम कितने सुखी हो? तुम्हे कोई नही सताता। क्या मीठे-मीठे फल देना ही मेरा कोई अपराध है?" आम, बंबूल से ऐसा कह रहा था।

गगा—पुत्र तूने ग्राम के गुरण को ग्रौगुण समझ लिया है। लेकिन ग्रच्छा है कि तू ग्रपने विचारो को मेरे सामने प्रकट कर देता है। इस तरह ग्रापस मे चर्चा करने से तेरा भ्रम दूर हो जायगा और तू वास्तविकता तक पहुच सकेगा।

गंगा फिर कहने लगी—बेटा, तू जिन कारणो से आम

मन क्यों समर्पित नही कर देती ? ऐसा करने से वर्तमान जन्म ही नही, असीम भविष्य उज्ज्वल हो उठेगा। इसके विरुद्ध, गई वस्तु के लिए रोने से क्या हाथ आने वाला है!

इस प्रकार जगत् को ज्योति दिखलाती गगा वन मे संतोष के साथ निवास करती है। वह गगकुमार को प्रकृति से सजीव शिक्षा दिला रही है। गगकुमार के लिए वन ही पाठशाला है, मौन प्रकृति ही शिक्षक है वन-वृक्ष, कलरव करने वाले वहां के पशु-पक्षी एव नदी-नाले ही उसके साथी-सगी हैं। प्रकृति की पाठशाला मे जड़-ज्ञान नही दिया जाता वहा कल्पना सजीव है, कला सप्राण है, सौन्दर्य जागृत है। वास्तव मे वन की शिक्षा बडी प्रभावजनक होती है। नगर के स्कूलो की प्राणहीन, नीरस और जबर्दस्ती बालको के गले उतारी जाने वाली शिक्षा वन-शिक्षा का मुकाबला नही कर सकती। वन की शिक्षा शिष्य मे नूतन कुतूहल, नवीन जिज्ञासा, नयी उमग, उत्साह रुचि और प्रीति उत्पन्न करती है। स्कूल की शिक्षा विद्यार्थी की स्वाभाविक जिज्ञासावृत्ति पर बोझ बनकर गिरती है और उसे नष्ट कर डालती है, विद्यार्थी मे अरुचि उत्पन्न करती है और उसके उत्साह को ठडा कर देती है।

भगवान् महावीर, बुद्ध, राम और कृष्ण आदि महापुरुषो को वन से ही शिक्षा मिली थी। जब यह सब महापुरुष वन से नही घबराये तो और किसी के घबराने की क्या बात है ? शहर की हवा बिगडने पर लोग वन को तो जाते हैं, लेकिन कभी वन की वायु विकृत होने के कारण वन-वासियो को शहर मे आना पडा है ?

है । अगर आप आम की तरह आघात सहने के लिए तैयार रहेंगे तो आपके घर मे कलह के कांटे उत्पन्न न होंगे। इसके विपरीत, अगर आप बंबूल के समान बनेंगे तो आपकी बदौलत धर्म की भी अवहेलना होगी और हमारी भी निन्दा होगी । आपके कुकृत्यो से आपके धर्म की और धर्मगुरुओं की प्रतिष्ठा बिगड़ती है, यह बात आपको सदा स्मरण रखनी चाहिए ।

गंगकुमार कहने लगा—माता मुझे भी आम अच्छा लगता है, बबूल नही । आपने बिल्कुल सत्य कहा है ।

गगा—ठीक है । अगर तुझे आम अच्छा लगता है तो तू भी आम के समान बनना । यह सिद्धान्त ध्यान में रखना कि—"जो बात मुझे अपने लिए पसन्द है वही मैं दूसरे के लिए करूं ।"

विपत्ति, सम्पत्ति के रूप में किस प्रकार परिणत हो सकती है, यह बात इस कथा से सहज ही समझ मे आ सकती है । गगा अपने पुत्र को लेकर वन में रहती है । वह इस स्थिति में तनिक भी घबराती नही, ऊबती नही । साहस के साथ परिस्थिति का सदुपयोग कर रही है । आज की दुःखित विधवाओ से गंगा मानो कह रही है कि—तुम्हारा पति मर गया है, लेकिन मैं तो अपने पति को छोड़कर आई हू, फिर भी मैं शान्ति और धैर्य के साथ अपना समय व्यतीत कर रही हू । तुम क्यो निरन्तर आर्त्तध्यान करके अपने भविष्य को मलिन बनाती हो ? एक न एक दिन विधवा बना देने वाले पति को रोती हो, इसके बदले अचल सौभाग्य देने वाले परम-पति (परमात्मा) के चरणो मे अपना शरीर और

कुमार ने कोयल से यह निस्पृहता सीखी और वाणी की मधुरता की महिमा सीखी ।

गंगकुमार आकाश को देखकर सोचता—आकाश असीम और अनन्त है । वह मानो सकेत करता है कि—"मनुष्य, तू भी अनन्त है पर अपनी अनन्तता को भूला हुआ है । उसको स्मरण कर और अनन्त बन जा । तेरे ही ताप ने मुझे अनन्तता प्रदान की है ।"

आकाश अनन्त है, यह वात मनुष्य के ज्ञान से ही जानी जाती है । कोई आकाश मे कितनी ही तीव्र और चिरकाल पर्यन्त गति करे, क्या वह आकाश का अन्त पा सकता है ? ऐसी अनन्तता का जो ज्ञान जानता है, वह क्या कम रहा ? वह आकाश से भी बड़ा ठहरा । फिर उस ज्ञान को विकसित करने के लिए शिक्षा क्यो नही लेते ? इस शिक्षा का महत्त्व बहुत अधिक है । इसी शिक्षा के प्रताप से गंगकुमार आगे चलकर 'भीष्म पितामह" कहलाए ।

कहते है एक बार भीष्म से किसी ने कहा—'आप विवाह करलें तो आपके पुत्र भी आप सरीखे होगे ।' इसके उत्तर मे उन्होने कहा था—मेरे पुत्र मेरे समान ही वीर होगे, यह कौन कह सकता है ? लेकिन मैं जो ब्रह्मचर्य पाल रहा हू, उसके कारण सारा ससार मेरा पुत्र है । मेरे आदर्श का अनुसरण करने वाले न जाने कितने वीर ससार में हो सकते हैं । इसलिये मेरी सन्तान की अपेक्षा मेरा आदर्श ही जगत् के लिए अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होगा ।

गगकुमार में ये उच्च सस्कार वन की बदौलत ही उत्पन्न

गगकुमार ने वृक्षो से नम्रता और सहनशीलता भी सीखी। नदियो से सतत क्रियाशीलता और लक्ष्य की ओर बढते जाने की उत्कठा सीखी। कोयल से मधुर वाणी सीखी। फूलो से प्रसन्नता सीखी। जैसे अन्धेरा होने पर भी फूल विकसित रहता है, उसी प्रकार विपत्ति पडने पर भी प्रसन्न रहने की शिक्षा ली।

विपत्ति आने पर भी प्रसन्न रहने से विपत्ति भी सम्पत्ति बन जाती है। ऐसे समय प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए परमात्मा का शरण लेना चाहिए। परमात्मा का शरण लेने पर विपत्ति मनुष्य को पीडित नही कर सकती, रुला नहीं सकती, वरन् रोते को धैर्य मिलता है, सान्त्वना मिलती है और सहने की क्षमता मिलती है। यह सब मिलने पर विपत्ति, विपत्ति नही रह जाती। उसे सह लेना साधारण बात हो जाती है। अर्जुन को रोना आ रहा था परन्तु कृष्ण के वचन सुनकर वह हसने लगा था। अतएव विपत्ति को जीतने के लिए परमात्मा का शरण ग्रहण करना चाहिए।

ससार मे सगीत में माधुर्य, मोहकता और आकर्षण लाने के लिए अनेक साधनो का आविष्कार हुआ है और अब भी होता रहता है, किन्तु कोयल के सगीत की समता किसी ने नही की। वृक्ष के नीचे चाहे राजा आया हो या रक आया हो, कोयल अपना स्वर नही बदलती। वह राजा के सामने विशिष्ट स्वरसधान नही करती। राजा के चले जाने पर भी उसका स्वर वही का वही कायम रहता है। कोयल नही सोचती कि अब मैं गाना किसे सुनाऊ? इस प्रकार कोयल के स्वर मे स्वातन्त्र्य है। उसका राग असाधारण और अप्रतिबद्ध है। गग-

कि यह महात्मा भी इसी उद्देश्य से यहां आये हैं। इनका चेहरा कैसा सौम्य है और आकृति मे तेज फूटा पड़ता है। इच्छा होती है, चलकर इनके पैर पकड़ लूं।

जब अन्तर्द्रष्टा अपने स्वरूप मे रमण करता है—अपने आप के अनुभव मे डूबा होता है तो वाह्य स्वरूप भी इतना सौम्य हो जाता है कि सिंह और हरिण जैसे जन्म-विरोधी पशु भी उसकी गोदी में लोटते हैं और अपना स्वाभाविक वैरभाव भूल जाते हैं। उन्हे पूर्ण अभय मिलता है। आन्तरिक प्रभाव के कारण ही इस प्रकार की निर्वैरवृत्ति प्राणियो में उदित होती है। समवसरण मे सब जीव निर्भय क्यो हो जाते हैं? भगवान् के आकर्षण से। भगवान् की आन्तरिक शक्ति दूसरे जीवधारियो की हिंसावृत्ति को कुंठित कर देती है। थोडी देर के लिए वे अहिंसा की स्निग्धता मे डूब जाते हैं।

जैसे लोहा चुम्बक की ओर आकर्षित होता है उसी प्रकार गंगकुमार चारण मुनि की ओर आकर्षित हुआ। वह मुनि की ओर गया और उनके समीप पहुचकर उनके पैरो पर गिर पडा। मुनि बडे दयालु थे। उन्होने सोचा—मैं इस वन में आया हू और यह बालक यहा मेरे पास आया है। अतएव इसका कुछ उपकार करना चाहिए। यह सोचकर मुनि ने गंगकुमार को उपदेश दिया।

लोहा ही चुम्बक की ओर आकर्षित होता है और लोहा ही पारस के ससर्ग से सोना बन सकता है। जो लोहा ही नही है, वह कैसे तो चुम्बक से खिच सकता है और कैसे पारस के स्पर्श से सोना बन सकता है? इस प्रकार जब वक्ता भी हो और श्रोता भी हो, तभी उपदेश सुनने-सुनाने की प्रवृत्ति

हुए थे । गंगकुमार में आकाश को देखकर अनन्तता की भावना उत्पन्न हुई । वह समझ गया कि मैं भी अनन्त हू। आकाश की अनन्तता को जानने वाला क्या आकाश से कम हो सकता है ? आत्मा के विषय मे कहा है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य. ।

अर्थात्—कायरो को आत्मा की उपलब्धि नही होती।

आत्मा की उपलब्धि द्रष्टा की वृत्ति से होती है । गगा ने अपने पुत्र मे ऐसी ही वृत्ति जागृत करने का प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से उसने वन की शिक्षा का आयोजन किया। जिसकी भावना उच्च होती है, सयोग उसे वैसे ही मिल जाते हैं । इसके अनुसार गगकुमार को भी वन मे उच्च सयोग प्राप्त हुआ ।

धर्म-देशना दिवी मुनि ने सुनी कुंवर वर ध्यान ।
समकित सह वह धर्म अहिंसा का पाया है ज्ञान ।।
आ के बात सब कही मात से, वह भी हर्षी जान ।
सव मिल ·· ·· ··· ····· · ·· ··· ···· भीष्म की ।।

गगकुमार ने प्रकृति से अनेक उत्तमोत्तम गुण सीखे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति प्राय. वन मे ही होती है । आज के लोग तो पुस्तकें रटकर ज्ञानी बनना चाहते हैं, पर प्राचीन काल के महापुरुषो ने वन से ही तत्त्वज्ञान सीखा था ।

गगकुमार एक दिन वन मे भ्रमण कर रहा था । वहा उसने ध्यान मे मग्न एक चारण मुनि को देखा । मुनि को देखकर वह उनकी ओर आकर्षित हुआ । सोचने लगा—मैं समझता था कि मैं ही वन मे सीखने आया हूं, लेकिन जान पड़ता है

उपदेशक दोनों ही योग्य थे। पात्र गगकुमार है और उपदेशक हैं आकाश मे उडने की शक्ति रखने वाले चारण मुनि। वे किसी प्रकार के बन्धन मे नही रहते। लेकिन उनकी शक्ति केवल उन्ही के लिए नही होती, वे अपनी समस्त शक्तियां आत्मकल्याण के साथ ही जगत्-कल्याण मे व्यय करते हैं।

उन मुनि में किसी प्रकार का कल्पित पक्ष नही था और न वन मे ही किसी प्रकार का पक्ष था। वन की बात जाने भी दीजिए और जिस मकान में आप बैठे हैं, उसी मकान की बात सोचिए। यह मकान पक्ष नही करता कि मैं अमुक को बैठने दूंगा और अमुक को नहीं बैठने दूंगा। जब मकान ऐसा पक्ष नही करता तो यह किसका माना जाय ? ऐसी स्थिति मे यही कहा जा सकता है कि मकान किसी का नही है, कुदरत के नियम का है। ऐसा होते हुए भी अगर कोई मनुष्य मकान के लिए अभिमान करता है तो उसका अभिमान मिथ्या है। जो वस्तु अभिमान त्यागने का बोध देती है, उसी को अभिमान का कारण बना लेना कितना अनुचित है ? मकान सभी को आश्रय देता है फिर भी मनुष्य उसे सिर्फ अपना मानकर घमण्ड करता है।

स्त्रियां भोजन बनाकर अभिमान करती हैं कि हमने बनाया है। लेकिन यह अभिमान क्यो ? आटा, आग, पानी और लकडी यह अभिमान नही कर सकते ? क्या इनके बिना भोजन बन सकता है ? फिर भी जब यह सब वस्तुएं अहंकार नही करती तो बहिनें क्यो अभिमान करती हैं ? अगर भोजन बनाने वाली बहिनें ऐसा विचार करें तो बहुत

होती है। किसी एक के होने से काम नही चलता। मैं अगर वक्ता तथा श्रोता दोनो ही सुपात्र हो तब तो कहना ही क्या है !

उन चारण मुनि ने किन शब्दों में गंगकुमार को उपदेश दिया था, यह तो नही कहा जा सकता, क्योंकि शास्त्र में कही उसका उल्लेख नही मिलता। फिर भी कल्पना करके वह बतलाया जा सकता है। मुनि ने कहा—

"वत्स ! तुम नगर मे होते तो तुम्हारी मुझ से भेंट होती या न होती, यह संदिग्ध है। लेकिन इस वन के प्रताप से तुम्हारी मेरे साथ भेंट हुई। तुम किसी विशेष कारण से वन में रहते होगे या आये होगे, पर हम मुनियो के लिए तो एकान्त मे रहना ही बतलाया गया है, और इस कारण महात्मा प्राय वन मे ही रहते हैं। मैं अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए ही नगर मे जाता हूं।"

भगवान् महावीर के पधारने का जहां कही वर्णन किया गया है, वहा यही कथन है कि भगवान् अमुक बाग मे पधारे। श्रेणिक और अनाथी मुनि की मुलाकात भी वन में हुई थी। इस प्रकार विवेकवान् को वन मे जैसा लाभ होता है, नगर मे नही होता।

मुनि ने गगकुमार से कहा—"हे वत्स ! तू मेरे पास आया है, इसलिए मैं तुझे दो शब्द सुनाता हूं। तू मेरे शब्दो को ध्यान से सुन।"

जो ज्ञान का पात्र होता है, वही ज्ञान को झेल सकता है। कुपात्र ज्ञान को पचा नही सकता। यहां पात्र और

साथ अभी मैत्री नही है—वैर है । अतएव प्राणी मात्र को परमात्मा के नाते अपना मित्र मानो । किसी के प्रति वैर-भाव मत रखो । यही वह मार्ग है, जिससे परमात्मा के शरण मे पहुचा जा सकता है । अगर आप परमात्मा के शरण मे गये होगे तो आपको अवश्य यह विचार आएगा कि जैसे मैं परमात्मा का पुत्र हू इसी प्रकार दूसरे प्राणी हैं । अतएव सभी जीव मेरे बन्धु और मित्र हैं । इसी विचार से परमात्मा का आश्रय मिल सकता है । बल्कि ऐसी भावना रखना ही परमात्मा का आश्रय पाना है । अतएव ऐसी ही भावना रखो और इस भावना को पहले अपने घर से ही आरम्भ करो । घर के सभी लोग एक-सी प्रकृति के नही होते । प्रत्येक की प्रकृति मे कुछ न कुछ भिन्नता होती ही है । उन सब की प्रकृति को देखकर चलना और समभावपूर्वक व्यवहार करना ही परमात्मा के मार्ग पर चलने का पहला कदम है ।

गगाकुमार ने मुनि का उपदेश सुना । उपदेश सुनकर उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई । उसने सम्यक्त्व के साथ श्रावक धर्म ग्रहण किया । उसकी इच्छा मुनि के पास से हटने की नहीं हो रही थी, लेकिन मुनि एक जगह कब ठहरने वाले थे । समय पर मुनि चले गए । गगकुमार वहा से लौटकर मन में मुनि का ध्यान करता हुआ अपने स्थान की ओर चला ।

वनचर पशु भी गगकुमार से करते अतिशय मेल ।
सिंह-बाल और गग-बाल मिल खेले दोनों खेल ॥
देख अहिंसा का प्रभाव यह गंगा-चित्त मे सेल ।
सब मिल · · ··· · · ···भीष्म की ॥

लाभ हो सकता है । "हाय मेरे माथे पर कितना काम का भार है—घर भर का काम मुझे ही करना पडता है", इस प्रकार अहंकारमिश्रित दुःख प्रकट करने से हानि ही होती है । कई स्त्रियां घडी भर सामायिक में बैठने मे तो आनन्द मानती हैं, लेकिन किसी बीमार की सेवा करनी पडे तो बडी कठिनाई और मुसीबत समझती हैं । वे कहने लगती हैं—मेरा दिन तो मल–मूत्र उठाने मे ही जाता है ! ऐसी बातों के लिए ही कहा गया है—

'हु करू', हुं करू', एज अज्ञानता,
शकटनो भार ज्यो श्वान ताणे ।

सोचना तो यह चाहिए कि जगत् का कोई भी काम मेरे बिना नही रुक सकता । जव मैं नही था तव भी सब काम होते ते और जब मैं न होऊंगा तब भी सब काम बदस्तूर जारी रहेगे । ऐसी दशा मे अहकार करने का क्या कारण है ?

मुनि ने गगकुमार को ऐसा ही उपदेश दिया । मुनि का उपदेश सुनकर गगकुमार ने निश्चय किया—अब से मैं यथाशक्ति सब जीवो की सेवा किया करूंगा । इस वन मे जो पशु-पक्षी रहते हैं, उनके साथ भी मैं मैत्री–सम्बन्ध स्थापित करूगा ।

भगवान् महावीर स्वामी ने आपको 'मित्ती मे सव्वभूएसु' का पाठ सिखाया है । अगर कोई आदमी यह समझता है कि जिसके साथ मेरा वैर है, उसके सिवाय दूसरे लोग मेरे मित्र हैं तो क्या उसकी समझ इस प्रशस्त पाठ के अनुकूल है ? मैत्री तो उन्ही के साथ स्थापित करनी चाहिए जिनके

गंगा—पुत्र, तेरा जीवन धन्य हुआ। तेरे नेत्र सफल हुए। तेरा यहा आना सार्थक हुआ। तू ने मुनिराज से जो उपदेश सुना है, उस पर पूरी श्रद्धा रखना। ऐसा करने से ही तेरा कल्याण होगा।

माता अपने बालक को जैसा चाहे बना सकती है। बालक को माता पर जैसा प्रेम होता है, दूसरो पर नही होता। यह बात दूसरी है कि कोई बाद मे अपनी पत्नी के अधीन हो जाए लेकिन बचपन मे तो माता पर उसे अखण्ड प्रेम और विश्वास होता ही है। कोई-कोई पुरुष जब सकीर्ण-वृत्ति वाली पत्नी के अधीन हो जाता है तो यह स्थिति उत्पन्न होती है—

बेटा झगरत बाप से कर तिरिया से नेहु।
बदाबदी यो कहत है, मोहि जुदा कर देहु।
मोहि जुदा कर देहु चीज सब घर की मेरी,
केती करू खराब अकल बिगरेगी तेरी।
कह गिरिधर कविराय सुनो हो सज्जन मिन्ता,
समय पलटता जाय बाप से झगरत बेटा।

इस प्रकार कई पुरुष आज अपने पिता से झगड़ने लगते हैं। लेकिन पहले के लोग माता-पिता का अत्यन्त आदर करते थे। आज अगर कोई बालक अपनी माता से झगडता है तो उसमें माता का भी उत्तरदायित्व है कि उसने उसे अच्छे सस्कार नही दिये। अच्छे सस्कार डालने पर ऐसी स्थिति नही आ सकती।

गगा ने अपने पुत्र को मुनि के उपदेश पर पूर्ण श्रद्धा

अहिंसा और उसके प्रभाव की बात गंगकुमार के हृदय में एक ही दिन के उपदेश से उतर गई। सुपात्र को एक ही बार का उपदेश पर्याप्त हो जाता है। खेत में एक बार बीज और सीप मे एक बार पानी का बूंद पड़ना काफी है। इसी प्रकार गगकुमार के लिए एक बार का उपदेश ही पर्याप्त सिद्ध हुआ। वह वीर माता-पिता का पुत्र था। साथ ही गगा ने उसके हृदय को अच्छे सस्कारो से सस्कृत किया था और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गगा ने वन का आश्रय लिया था। इसी से गगकुमार के हृदय मे अच्छे सस्कार पड़े और मुनि का एक ही बार का उपदेश उसके हृदय मे जम गया।

गगकुमार प्रसन्न होता हुआ अपनी माता के पास पहुचा। पुत्र को हर्षित देखकर गगा ने पूछा—बेटा, आज तुम बहुत प्रसन्न दिखाई देते हो। क्या बात है?

गगकुमार—हां माता, आज मुझे बड़ा हर्ष है।

गगा—बता तो सही, हर्ष की क्या बात है? योग्य पुत्र अकेला हर्ष नही मनाता वरन् अपने माता-पिता को भी उसमे हिस्सा देता है।

गंग०—माताजी, आज वन मे मुझे एक महात्मा पुरुष के दर्शन हुए। मैंने उनका उपदेश सुना है। उनका उपदेश क्या था, मानो समग्र प्रकृति पिण्डीभूत होकर मुनि के रूप में उपदेश दे रही थी। औरो के वचन तो वचन ही होते हैं पर उनके वचन प्रवचन* थे।

---

*वचन और प्रवचन का भेद पूज्य श्री के प्रकाशित व्याख्यानो मे अन्यत्र स्पष्ट किया गया है।

आप अहिंसा आदि पर विश्वास रखोगे तो आपका अशुभ अदृष्ट भी शुभ मे पलट जायगा। बहुत समय का अशुभ अदृष्ट थोडे समय का हो सकता है और बहुत शक्ति वाला थोडी शक्ति वाला बन सकता है। अहिंसा के प्रताप से दुख भी सुख बन सकता है और विष भी अमृत हो सकता है। आग भी शीतल हो सकती है और कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो सकता है। अतएव अहिंसा पर विश्वास रखकर दुःख से घबराना नही चाहिए किन्तु निश्चल भाव से सोचना चाहिए कि जो कुछ होता है, भले के लिए ही होता है।

गंगकुमार के हृदय मे गंगा ने जो प्रकाश उत्पन्न कर दिया था, उसके कारण वह सोचा करता था—मैं इस शरीर का सदुपयोग करूंगा। इस प्रकार की भावना से प्रेरित होकर उसने सब जीवो के साथ मैत्री–सम्बन्ध स्थापित किया। एक के मन का प्रभाव दूसरे के मन पर पडता है। अगर अपने मन में वैर नही है तो दूसरे के मन का वैर भी शान्त हो जायगा। कदाचित् इसका अपवाद भी हो जाता है। सूर्य की किरणें सब पर समान रूप से पडती हैं, मगर चमकता वही है जिसमे चमक होती हैं। जिसमें स्वाभाविक चमक नही है, वह सूर्य की किरणो का सयोग पाकर भी नही चमक सकता। इसके लिए सूर्य को दोष नही दिया जा सकता। इसी प्रकार शायद कभी आपके मन की पवित्रता का प्रभाव दूसरे पर न भी पडे, लेकिन जैसे किसी पदार्थ के न चमकने पर सूर्य अपना प्रकाश देना वन्द नही कर देता, उसी प्रकार किसी दूसरे पर प्रभाव न पडने के कारण आपको अपना मन अपवित्र न होने देना चाहिए। अपने मन को अपवित्र मत होने दो—सदा पवित्र रखो और पवित्रता मे अगर कोई त्रुटि

रखने के लिए प्रोत्साहन दिया । गगा के प्रोत्साहन से अहिंसा पर उसे पूर्ण श्रद्धा हो गई । उसने पशुओं और पक्षियो पर भी मित्रता का भाव धारण किया । योगसूत्र के निर्माता पतञ्जलि ने कहा है—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।

अर्थात्—जहा अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है, वहा वैर नही रहता ।

गगकुमार के हृदय मे भी अहिंसा की प्रतिष्ठा हुई । इस कारण वनके पशु-पक्षी भी उसे प्रेम करने लगे । हरिण निर्भय होकर उसके साथ खेलते और सिंह भी उससे स्नेह करते । अगर आप अपने अन्तःकरण की वैरवृत्ति को दूर कर देंगे तो क्रूर से क्रूर जीवो पर भी आपका असर पड़े बिना नही रहेगा ।

गगकुमार के साथ सिंह के बालको को क्रीडा करते देखकर गगा की प्रसन्नता का पार न रहा । उसने सोचा—मुनिराज के मिलने से मेरा बेटा 'सिद्ध' (महात्मा) हो गया है । अब न इसमे वैरवृत्ति है, न भय की भावना है । मेरा वन-वास सफल हुआ और मैं कृतकृत्य हो गई ।

किस समय कहा क्या होता है, यह सर्वसाधारण नही जान सकते । आप अभी धर्मस्थान मे बैठे है । आपको क्या पता कि घर पर क्या हो रहा है ? लेकिन आपका अदृष्ट वहा भी काम कर रहा है । आपका अदृष्ट जानता है कि वहा क्या हो रहा है ! अतएव केवल दृष्ट को ही पकड कर बैठना उचित नही है, किन्तु अदृष्ट पर भी विश्वास रखना चाहिए । अगर

तो मैं मृगया के लिए न जाता ।

स्त्रियां चाहे तो पुरुषों को सुधार सकती हैं। वे त्याग करने को तैयार हों तो पुरुषों को बतला सकती हैं कि अपने विवाह के समय जो प्रतिज्ञाएं की हैं, उनसे हटना अब सम्भव नही है । मगर इसके लिए स्त्रियो में जिस त्याग-भाव की आवश्यकता है, वह कहा है ? आज उनमे त्याग की शक्ति क्षीण हो गई है, इसी कारण उन्हें पुरुषो का अन्याय सहन करना पडता है । मालवा, मेवाड और मारवाड़ में प्रायः देखा जाता है कि घर मे सुन्दरी स्त्री होने पर भी एक 'खापण' लाकर बैठा दी जाती है । मगर स्त्रियां यह अन्याय क्यों सहन करती हैं ? उन्हे जेवर और वस्त्रो का लोभ है। इस लोभ के कारण वे सब अन्याय सह लेती हैं। ऐसी स्त्रियो को गगा के चरित पर ध्यान देना चाहिए । गगा सरीखी स्त्री अपने पति को ठिकाने ला सकती है । वह प्रतिज्ञा की रक्षा करके अपनी दृढता प्रकट करे तो पति की बुद्धि ठिकाने अवश्य आ जाए ।

शान्तनु, गंगा के लिए पश्चात्ताप करता रहा । इस बात को बरसो बीत गये । राजा के साथियो ने उसे समझाया—आप इस तरह रानी के लिए दु:खी बने रहेगे तो लोक-हसाई होगी और शत्रुओ का बल बढेगा । इसके अतिरिक्त दु:ख मानने और पश्चात्ताप करने से कोई लाभ भी तो नही है । रानी जब जा चुकी है तो शोक करने से क्या लाभ ?

बहुत से काम केवल लोक-लाज से किये जाते हैं। कई-एक सामाजिक नियम ऐसे हैं, जिनमे समय के अनुसार

हो तो उसे खोजकर दूर कर दो । मन अगर प्राणीमात्र के प्रति वैरविहीन हो गया तो समझ लो कि तुम कल्याण के निकट पहुंच गये ।

स्वभावतः क्रूर और हिंस्र समझे जाने वाले पशु भी गंगकुमार के मित्र बन गये । जब गंगकुमार ने ऐसे हिंसक जीवों से भी मित्रता स्थापित कर ली तो क्या आप अपने घर के लोगो से, अपने कुटुम्बी जनों से भी मैत्री सम्बन्ध नही जोड सकते ? गंगकुमार ने वन के पशुओ को भी अपना कुटुम्बी माना और उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित किया तो आप जिन्हें जन्मतः अपना कुटुम्बी समझते हैं, क्या उनके प्रति भी प्रेम प्रदर्शित नही कर सकते ? दूसरो के दोष मत देखो । अपनी भावना शुद्ध करो । दूसरो के दोष खोजते रहना अपनी भावना मलिन बनाना है । शुद्ध भावना के साथ कब तक वैर बनाये रखोगे ? जब आपकी भावना शुद्ध होगी तो जड प्रकृति और चेतन प्रकृति पर आपका प्रभाव पड़े बिना नही रह सकता ।

९ : पिता--पुत्र का संघर्ष

अब जरा हस्तिनापुर की ओर ध्यान दीजिए । यह कहा जा चुका है कि राजा शान्तनु, गंगा और गंगकुमार के वियोग से दु.खी हो गया । पहले तो उसने अपने साथियो के कहने मे लगकर और कुछ-कुछ अपने पुरुषत्व के अभिमान में आकर अपनी प्रतिज्ञा भग कर डाली, मगर पीछे वह बहुत पछताया । वह सोचने लगा—मैं नही जानता था कि गगा अपनी प्रतिज्ञा पर ऐसी अटल रहेगी । ऐसा जानता

औषधि है। मृगया करने से सब दुःख बिसर जाते हैं और स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

इस तरह बहकाने वाले लोगों से राजा ने कहा—पहले तुम लोगो के कहने से रानी की परीक्षा करने के लिए मे शिकार खेलने गया था। लेकिन ऐसा करने से मेरी ही परीक्षा हो गई और मैं उसमे अनुत्तीर्ण रहा। यदि मैं जानता कि रानी सचमुच ही चली जाएगी तो मैं तुम्हारा कहना हर्गिज न मानता। जिस मृगया के कारण मुझे रानी और राजकुमार को त्यागना पड़ा या उन्हे मुझे त्यागना पड़ा और जिसके कारण मैं प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हुआ, क्या फिर भी मुझ से वह करवाना चाहते हो ?

राजा का यह उत्तर सुनकर मृगया-रसिको ने कहा—महाराज ! अब न परीक्षा का प्रश्न है, न रानी की बात है और न प्रतिज्ञा का सवाल है। यह सब बातें कभी की समाप्त हो चुकी। गई-गुजरी बातो को याद करके दिमाग को परेशान करने से कोई लाभ नही है। प्रत्येक नवीन दिन जीवन मे नवीनता लेकर आता है। इस नवीनता के वातावरण मे ही हमे विचार करना चाहिए। अतीत को भुलाये बिना कोई सुख-चैन से नही रह सकता। अतएव पुरानी बातें मस्तिष्क मे से निकाल फेंकिए और वन की खुली हवा में सैर कीजिए। ऐसा करने से मन पर लदा हुआ भारी बोझ हल्का हो जाएगा।

दुर्व्यसन की बात बहुत जल्दी अच्छी लगती है। अगर वह अभ्यस्त हो तो फिर कहना ही क्या है ? वह तो और भी जल्दी समझ में आ जाती है। राजा अपने साथियो की

परिवर्त्तन होना आवश्यक है मगर परिवर्त्तन नहीं किया जाता है। वह लोगों के लिए भार रूप प्रतीत होते हैं। ऐसे नियमो का बाह्य रूप से पालन केवल लोकलाज के कारण ही किया जाता है।

लोक-लाज से या भय से या बात पुरानी पड़ जाने से राजा का दु:ख कुछ कम हो गया। धीरे–धीरे वह राज–काज चलाने लगा।

मृगया–रसिको के बहकाने से फिर बहके महाराज,
सोई हुई मृगया की भावना जागृत हुई पा साज।
चले जंगल मे आये वहां जहं खेले गग महाराज,
सब ······ ······ ··········· ·· · ·· ···· ···भीष्म की ।।

राय–जनों के कोलाहल से मृग सब पाये त्रास,
इधर–उधर सब लगे दौडने आये आश्रम पास।
दीनानन को देख विचारे होकर कुंवर उदास,
सब ······· ······ ······· ················भीष्म की।

इन पशुओं को दु:खित करने कौन है आया चाल,
मेरी शरण मे ये सब हैं और मैं इनका रखवाल।
इन्हे त्रास पहुंचायेगा जो मैं हू उसका काल,
सब···· ·· ·· · ············· ··· ···········भीष्म की ।।

शान्तनु के पुराने साथियो ने फिर उस पर डोरा डालना शुरु किया। वे कहने लगे—महाराज ! कायरता दिखलाना उचित नही है। वे मन मे कुछ भी हो बाहर से तो वीरता ही दिखलानी चाहिए। घर में बैठे–बैठे उदासी रहती है। इसलिए वन मे चलिए। मृगया मानसिक दु:खों की अमोघ

दूसरों को अभय देने वाला स्वयं निर्भय होना चाहिए ।

इतने मे एक रथ को देखा, बोला कुंवर तत्काल,
मेरी शरण में यह सब हैं मत मारो तुम भूपाल ।
शरणागत की रक्षा करते क्षात्र धर्म प्रतिपाल,
सब··· ·· ·· ··· · · ······ ········· · ···भीष्म की ॥

राजा शांतनु शिकार के रग मे रंगकर पशुओ पर बाण बरसा रहा था । उसके अनेक साथी पशुश्रों को राजा के सामने लाने के लिए हल्ला कर रहे थे । वनपशु घबराहट के मारे इधर से उधर भाग रहे थे ।

विचारणीय बात है कि पशुश्रो को कष्ट मे देखकर गंग-कुमार एक भी क्षण का विलव किये विना तत्काल उनकी रक्षा के लिए दौड पडा । क्या यह पशु उसके कोई रिश्तेदार थे ? श्राप ढीलापन लाकर कह देंगे—छोटो के लिए बड से वैर मोल लेना ठीक नही है । मरते हैं तो वह मरते हैं । श्रपना क्या लेते हैं ? लेकिन गगकुमार ऐसा सोचने वाला कायर नही था । उसने पशुश्रो के कष्ट को श्रपना ही कष्ट माना और उसे नष्ट करने के लिए झटपट चल दिया ।

शान्तनु शिकार के रग में रगा हुश्रा था और गंग-कुमार रक्षा के रग में रंगा हुश्रा था । वह पशुओ को सताने वाले की खोज मे निकला था । इतने मे उसकी दृष्टि एक रथ पर और उसमे बैठे हुए राजा पर पडी । रथ देखते ही वह समझ गया कि यह कोई राजा है । यद्यपि रथ में बैठा शान्तनु गगकुमार का पिता था, फिर भी उनमे से कोई किसी को नही पहचानता था । गगकुमार को यह जानकर भी कि यह

बातो मे आ गया और उसने मृगया की तैयारी आरभ करने की आज्ञा दे दी ।

मृगया की तैयारी हो गई । राजा के साथी राजा को आगे करके मृगया के लिए वन मे पहुचे । सब शिकारियो ने वन के पशुओ को बड़ा त्रास पहुंचाया । यद्यपि क्षत्रियो का धर्म निर्बलो की सहायता करना है मगर दुर्व्यसनो के कारण और पहले के कुसस्कारो के कारण मनुष्य अपने धर्म को भूल जाता है और निर्बलो को भी सताने लगता है । राजा और उसके साथियो ने वन के दीन-हीन पशुओ पर अत्याचार करना आरंभ किया । वन के पशुओ में घबरावट फैल गई । वे अपनी रक्षा का स्थान खोजने लगे । पशु-पक्षी भी जानते हैं कि किसके पास या किस स्थान पर जाने से उनकी रक्षा होगी और वे ऐसी जगह चले भी जाते हैं । तदनुसार वन के पशु भाग-भाग कर गगकुमार के पास आये ।

भयभीत पशुओ को देखकर गगकुमार सोचने लगा—आज ये पशु इतने बेचैन और त्रस्त क्यो हैं ? जान पडता है, मुझसे अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे हैं । आज तक इस वन मे पशुओ को किसी ने नही सताया । कभी कोई भूल—चुक से शिकार के लिए यहा आया भी तो मेरा नाम सुनकर चला गया । पशुओ को किसी ने पीड़ा नहीं पहुचाई । फिर आज ऐसा कौन आया है, जो इन बेचारों को सता रहा है ?

जिस ओर से पशु भागे चले आ रहे थे, गगकुमार उसी ओर चल दिया । उसे किंचित् भी भय नही था । जो स्वय भयभीत होगा, वह दूसरो का भय कैसे मिटा सकता है ?

इस प्रकार सोचकर राजा ने पूछा—तुम कौन हो ? कहां रहते हो ?

गंगकुमार ने अपने स्थान की ओर संकेत करके कहा—मैं वहां रहता हूं ।

राजा—मैंने उस स्थान का पट्टा तुम्हे कब लिख दिया है? खैर, रहते हो तो रहो । पर बाकी जगह पर तो मेरा अधिकार है । मैं जो चाहूंगा करूंगा । तुम यहा से भाग जाओ । अपनी जगह बैठो । मेरा कहना न माना तो यह बाण देख लो । तुम्हारे लिए एक ही बाण काफी होगा । तुम अभी बालक हो । तुम्हे देखकर दया आती है, नही तो किसकी मजाल है कि वह मुझे रोकने का साहस करता । जाओ, अपनी जगह चले जाओ ।

अगर आप शक्ति का संचय करके साहस से काम लें तो बहुत लाभ हो सकता है । लेकिन लोगों मे शक्ति होती है फिर भी साहस के अभाव मे वह काम नहीं आती । साहस होने पर आपमे जितनी शक्ति है, उसी से बहुत कुछ हो सकता है ।

मेरे बचपन की बात है । मेरा जन्म जिस गांव में हुआ था, उस गाव—थादला—की नदी मे मछलिया मारने की मनाई थी । वहा एक अगरेज मछलिया मारने के लिए आया । उस जमाने में अगरेज को भला कौन रोके ? मगर कुछ साहसी लोग वहा के हाकिम के पास पहुचे । हाकिम को सब बात कही । हाकिम को साथ लेकर लोग अगरेज के पास गये । हाकिम ने उससे कहा—यह जमीन यहा के महाजने के

राजा है, किसी प्रकार की झिझक नही हुई। उसने सोचा-राजा है तो रहे। सच बात कहने मे डर क्या है ? और जब ये पशु मेरे शरण में आये हैं तो इनकी रक्षा करना मेरा धर्म है।

गगकुमार ने शान्तनु के सामने जाकर कहा—महाराज, विराम ! विराम ! यह सब पशु मेरे शरण मे आये हैं इसलिए आप इन्हे मत मारिए। यह केवल जीवनदान चाहते हैं और कुछ नही चाहते। आप राजा है। इतना तो सोचिए कि आपका इनके प्रति क्या कर्त्तव्य है ? आपका कर्त्तव्य इनकी रक्षा करना है, मारना नही। इन्हे मारने के लिए तो वधिक लोग है ही। आपको तो इनका रक्षक होना चाहिए। अतएव इन्हे मारने मे आप जो पराक्रम दिखला रहे हैं, वह पराक्रम इनकी रक्षा मे दिखलाइए।

गगकुमार के कथन के उत्तर मे राजा कहता है—

जाकर तुम बैठो आश्रम मे मत बोलो नादान,
मेरे वाण के भोग बनोगे यदि न मानो कान।
बालहत्या तो मुझे लगेगी यों बोला राजान्।
सब ....भीष्म की ॥

गगकुमार का कथन सुनकर राजा मानो चौक उठा। सोचने लगा—यह बालक कौन है ? इस तरह निर्भीकता के साथ बोलने वाला इस वन मे यह बालक कहा से आया ? इसके वचनो मे तेज है, निर्भयता है। पर यह कैसा दुस्साहस कर रहा है कि मुझे राजा समझ कर भी रोकता है। फिर राजा ने सोचा—अभी नादान है। इसे विवेक नही हैं। इसी से ऐसा कहता है।

आप यह सोचते हैं कि बराबरी वाले के साथ लडाई की जाती है—बच्चे से क्या लडना ? और मे भी आपसे यही कहता हूं। मैंने यही तो कहा है कि बराबरी वालो के सामने आप अपना पराक्रम प्रकट कीजिए । ये जगल के पशु आपकी बराबरी के नही हैं । इनके पास कोई हथियार नही है । फिर आप इन्हे क्यो मार रहे हैं ? आप क्या इन्हे अपनी बराबरी के समझते हैं ? मुंह मे तृण ले लेने वाले शत्रु को भी क्षत्रिय क्षमा कर देते हैं तो जो पशु सदैव मुंह मे तृण दबाये फिरते हैं उन्हे मारना क्या बहादुरी है ? आपका धर्म तो यह है कि इनकी रक्षा करने मे आवश्यकता हो तो सर्वस्व भी लगा दें । लेकिन आप इसके विरुद्ध इनके प्राण ले लेने पर उतारू हो रहे हैं । क्या यह उचित है ?

आपने जैनधर्म पाया हैं । क्या आपके लिए यह उचित है कि आप तुच्छ वस्तु के लिए महान् वस्तु का नाश करें ? जरा-जरा-सी बात के लिए अपनी सद्‌भावना नष्ट होने देना आपके लिए अनुचित है । अपना सर्वस्व देकर भी सद्‌भावना की रक्षा करना चाहिए । पहले के लोग सद्‌भावना की रक्षा मे प्राण तक दे देते थे । प्राण जाए तो जाए,लेकिन अपनी सद्‌भावना और संस्कृति नष्ट नही होने दी जाती थी । भारत की न मालूम कितनी महिलाओ ने धधकती आग मे कूदकर प्राण दे दिये पर अपना धर्म और संस्कृति नही जाने दी । इसके विरुद्ध आज क्या दिखाई दे रहा है ? आज लोग अपने धन और प्राण की रक्षा के लिए सभी कुछ त्याग सकते हैं । यह कायरता का लक्षण है । गगकुमार कायर नही था । उसने उसी निर्भयता के साथ राजा से कहा—"आप राजा हैं । रक्षा करना आपका विरुद है । आप सब के स्वामी हैं। रक्षक के

अधिकार मे है और इस कारण यहां मछलियां मारने की मनाई है । अगरेज ने कहा—"अच्छा, ऐसा है ?" और वह वहां से चला गया ।

यह एक साधारण सी मिसाल है । पर उस समय देहात के लिए यह भी साहस का काम था । तात्पर्य यह है कि साहस रखने से वहुत से काम हो सकते हैं । साहसी के सामने देवता भी नम्र हो जाते है । गगकुमार साहस के कारण ही राजा के सामने गया और उससे पशुओ को न मारने के लिए कह सका । यो देखो तो कहां राजा शांतनु और कहा वालक गंगकुमार ! शान्तनु का एक ही वाण उसका अन्त कर सकता था । वहा गगकुमार की सहायता करने वाला कौन था ? मगर उसमे साहस था । गंगा और मुनि की शिक्षा से वह समझ गया था कि मरना कोई वडी वात नहीं है । वह तो प्रकृति का साधारण नियम है । मरने पर ही नवीन जन्म मिलता है । फिर मरने मे डरने की क्या आवश्यकता है ?

राजा के कथन के उत्तर मे गगकुमार कहता है—

बालहत्या के महापाप से तो डरते भूपाल,
शरणागत तृणभक्षक पशुओ के बनते क्यो काल ?
रक्षक भी भक्षक होवे तो बिगडे जग का हाल,
सव ‥ ‥ ………………………… भीष्म की ॥

राजा के कथन के उत्तर में गंगकुमार बोला—"महाराज ! आपको इतना विचार तो है कि बालक की हत्या नही करनी चाहिए । इसी कारण आप मेरी हत्या नही कर रहे हैं अर्थात्

गगा के साथ है और महारानी यहां कहा ? यह कोई दूसरा क्षत्रिय बालक होना चाहिए । अन्त मे राजा ने कहा—

किसके सामने बोल रहा है रे बच्चे नादान,
छोटे मुंह से बडी बात कहना यह है अज्ञान ।
राजनपति राजा मैं हू युद्धवीर बलवान,
सब मिल · ···· ·· ····· · ·· ·····भीष्म की ।।

राजा, गगकुमार की युक्तियुक्त बात का उत्तर नही दे सका । अतएव वह अपनी सत्ता का उपयोग करने लगा । वह बोला—"छोटा-सा बालक है, फिर भी तू डरता नही ? यह नही जानता कि तू किसके सामने बोल रहा है ! किसे क्षात्र-धर्म सिखला रहा है ! तू यह भी नही देखता कि तुझे क्षात्र-धर्म सिखलाने का अधिकार भी है या नही ? क्षात्र-धर्म मैं समझ सकता हू या तू ? छोटे मुंह बडी बात शोभा नही देती । जान पडता है, तू मुझे जानता नही । इसी कारण इतना बकवास कर रहा है । मैं कोई साधारण व्यक्ति नही—प्रतापी राजा हू । यह भूमि मेरे अधिकार मे है । इसलिए तू चुपचाप यहा से खिसक जा । अपनी माता की गोद मे बैठ ।'

दूसरा कोई होता तो राजा का यह रौबदार परिचय सुनकर दब जाता और सोचता कि मै बैठे-बिठाये किस से भिड़ गया । लेकिन वह गगकुमार था । बहुत-से लोग ऐसा अभिमान करते हैं कि हमारे सामने कौन बोल सकता है ? जो हम कहते हैं वही सही है । जिसे हम पूर्व दिशा कहे, वही पूर्व दिशा है । लेकिन इस प्रकार के अभिमान का प्रभाव जिस पर पड़ता है, उसी पर पड सकता है । राजा को भी ऐसा अभिमान हुआ । पर गगकुमार पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा । गगकुमार क्या कहता है—

बदले भक्षक मत बनिये । रक्षक भक्षक बन जायगा तो घोर अनर्थ हो जायगा ।"

वास्तव मे बचपन के संस्कार हाड़-मास की तरह जीवन में ऐसे व्याप जाते हैं कि अन्त तक दूर नहीं होते । कहा भी है—

यन्नवे भाजने लग्न संस्कारो नान्यथा भवेत् ।

नये बर्तन पर जो चित्र बनाये जाते हैं वे बर्तन के पक जाने, यहां तक कि फूट जाने पर भी नही जाते हैं । बाल्यावस्था के संस्कारों पर कितने ही नवीन संस्कार आते-जाते रहते हैं, मगर उन्हे वे नष्ट नही कर सकते । गंगकुमार के उदाहरण से यह बात सहज ही समझ मे आ सकती है कि बालक पर किस प्रकार के संस्कार डालने चाहिए । गंगकुमार के कोमल चित्त पर सर्वप्रथम माता ने ही अहिंसा के संस्कार अंकित किये थे । मुनि का समागम तो बाद मे हुआ और थोड़ी देर के लिए ही हुआ । उन्ही सस्कारो से प्रेरित होकर उसने प्रतापी राजा शान्तनु से कहा था—जब आप मुझ पर दया दिखलाते हैं तो क्या ये गरीब पशु आपकी बराबरी के है ? आप सचमुच दयालु हैं तो इन पर भी दया कीजिए ।

गगकुमार का कथन सुनकर शान्तनु सोचने लगे—यह किसका लडका है, जो इस प्रकार निर्भयता से बातें करता है ! इसने मेरी बात का ऐसा उत्तर दिया है कि मुझे निरुत्तर कर दिया । बालक सुन्दर और तेजस्वी है । इसकी आकृति मे मेरा प्रतिबिम्ब-सा झलकता है । लेकिन यह मेरा मोह है । मेरा पुत्र यहा कैसे हो सकता है ? मेरा पुत्र महारानी

हाथ इस पर चलना नही चाहते ! राजा ने प्रकट में कहा—बस, छोकरे ! चुप रह । अन्यथा तेरी खैर नहीं ।

गंगकुमार ने कड़क कर कहा—ये जीव मेरे आश्रित हैं। आश्रितो की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है—धर्म है । अपने कर्त्तव्य को पालन न करना कायरता है । मैं कायर नहीं हूं, जो अपने आश्रित प्राणियों की रक्षा न करूं । मैं अपने प्राण देकर भी इनकी रक्षा करूंगा । मेरे जीते जी इन पर कोई प्रहार नही किया जा सकेगा ।

गंगकुमार का कथन सुनकर राजा को भी क्रोध आ गया । फिर क्या था—

क्रोधित होकर जब राजा नें छोड़े कुंवर पर बाण,
सभी बाण को काट गिराया कुंवर बड़ा बलवान ।
लगा बाण बरसाने वह भी राय हुआ हैरान,
सब मिल............ ....भीष्म की ।
ध्वजा पतन को देखे तब तक प्रत्यचा टूट जाय,
युद्ध–वीर पूरा है बालक सोचे यो महाराय ।
वत्सल रस मे आये राजवी मन में प्रेम भराय,
सब मिल................ ....भीष्म की ।

आपने युद्ध के उदाहरण तो बहुत सुनें होगे, लेकिन पिता–पुत्र का यह युद्ध अनोखा ही था और वह भी अपने आश्रित पशुओ की रक्षा के निमित्त ।

गंगकुमार की अन्तिम चुनौती से राजा का क्रोध भड़क उठा । उसने क्रोध में आकर गगकुमार पर बाण छोड़ दिया मगर गंगकुमार ने आते बाण को अपनी तलवार से काट

नही वीरता होती वचन से राजनपति महाराज,
इन पशुओ को छोड़ दिखादो मुझको अपना काज।
तुच्छ मघ सम छोड़ो गर्जना बन जाओ मृगराज,
सब ....भीष्म की ॥

गगकुमार ने राजा से कहा—महाराज, आपका रथ देख कर ही मैं समझ गया था कि आप राजा हैं। अपने मुख से अपना प्रशसापूर्ण परिचय देने की कोई आवश्यकता न थी। आपको राजा समझते हुए भी मैं आपसे न्यायसंगत निवेदन कर रहा हू। न्याय की बात हर किसी के सामने कही जा सकती है। बल्कि आप राजा हैं, इसलिए तो आपको मेरी बात माननी ही चाहिए। निरपराध और निर्बलो की रक्षा करना ही प्रधानतः राजधर्म है। मैंने जो कुछ कहा है, उसमे कोई गलतफहमी नही है। उसमे कूट-कूट कर सचाई भरी है। क्या आप यह नही सोचते कि राजा दूसरो की रक्षा के लिए होता है, घात करने के लिए नही होता।'आप दीन-हीन पशुओ पर अपना पराक्रम प्रकट कर रहे हैं और राजा होने का अभिमान भी कर रहे हैं! यही आश्चर्य है। वीर पुरुष गरीब पशुओ से नही जूझता। इन्हे मारने मे कोई वीरता नही है। अगर आप सचमुच वीर हैं तो अपनी वीरता मुझे दिखलाइए और पशुओ को जिन बाणो का लक्ष्य बना रहे हैं, उनका लक्ष्य मुझे बनाइए।

गंगकुमार की बात सुनकर राजा सोचने लगा—यह लड़का मुझे चुनौती देता है! मुझे चिढाता है! इसका अपराध तो अक्षम्य है, मगर न जाने क्यो इस पर मुझे स्नेह-सा हो रहा है। इसकी इतनी उद्दंडताभरी बाते सुनकर भी मेरे

अविनाशी है। उसकी मृत्यु नहीं, जन्म नहीं। मरता तो शरीर है। लोग कहते हैं—फला मनुष्य मर गया। लेकिन साधु कहते हैं—जिसने मरणभय को जीत लिया, वह अमर हो गया। जिसे ज्ञान हो गया है कि शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं—शरीर आत्मा नही है, वह मरने से भय क्यों करेगा ? जिसका मकान पूरा-आदि से अन्त तक-पक्का है, उसे मकान में आग लगने की चिन्ता क्यों होगी ? वह सोचेगा—मेरा मकान पक्का है। उसमें आग प्रवेश नही कर सकती। इसी प्रकार जब आत्मा की अमरता का विश्वास हो जाता है तो मृत्यु का भय रह ही नहीं जाता।

गंगकुमार सोचता है—मैं राजा की तरह निर्दय नहीं कि उसे मार डालूं। ईंट का बदला पत्थर से लेना अनुचित है।

इस प्रकार सोचकर गंगकुमार ने अपने बाण द्वारा राजा के रथ की ध्वजा गिरा दी। राजा अत्यन्त आश्चर्य के साथ ध्वजा की ओर देखने लगा। उसी समय उसने दूसरा बाण चलाया और राजा के धनुष की प्रत्यंचा काट गिराई। अब तो राजा के आश्चर्य का पार न रहा। वह मन ही मन बालक की वीरता की प्रशंसा करने लगा। वह सोचने लगा—यह कोई विद्याधर तो नही है ? यह भाग्य-शाली बालक किसका है ?

१० : पति-पत्नी-पुत्र का मिलन

पिता-पुत्र को लड़ते देखकर आई पुत्र के पास,
किससे लड़ते हो तुम बेटा ! बोली गंगा खास।

डाला। राजा ने और भी बाण चलाए मगर गंगकुमार ने बड़ी फुर्ती के साथ सारे बाण काट फेंके। यह देखकर राजा चकित रह गया! सोचने लगा— मेरे बाण और इस तरह बेकार हो जाएं! आज तक तो ऐसा कभी हुआ नहीं। कितने कौशल के साथ यह वाण काट डालता है! यह लड़का है कौन?

राजा इस सोच-विचार में पड़ा ही था कि गंगकुमार ने सोचा—यही अवसर है। इसी अवसर का लाभ उठाकर राजा को अपना पराक्रम दिखलाना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने पराक्रम दिखलाने का निश्चय किया। साथ ही उसने सोचा—मैं पशुओं की भी रक्षा करना चाहता हूं तो क्या मनुष्य की हत्या करूं?

वस्तुतः मारने की अपेक्षा मरने के लिए अधिक वीरता की आवश्यकता होती है। लेकिन कुत्ते-बिल्ली की मौत मरना वीरता नहीं, शेर की मौत मरने मे अधिक वीरता है। कहा जा सकता है कि मरना कौनसी बहादुरी है? पर ऐसा कहने वालो को सोचना चाहिए कि सात प्रकार के भयो मे से जो मृत्यु के भय को जीत लेता है, वह क्या वीर नही है? कम से कम साधुओ को तो मरने के विषय मे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। कहा भी है—

फिकर सभी को खा गई,
फिकर सभी का पीर।
फिकर का फाका करे।
उसका नाम फकीर।

सोचना चाहिए कि मरता क्या है? आत्मा अजर, अमर

निज विद्या की करे आराधना कुंवर महा हुशियार,
सब मिल..भीष्म की ॥

सब मिलकर अब चलें राज में बर्ते मंगलाचार,
देख अहिंसा का प्रभाव मैं तजता हूं शिकार।
प्राण जाय पण प्रण न तोडूं यह सच्चा निरधार,
सब मिल..भीष्म की ॥

स्वतन्त्रता को छोड के राजन् बनूं न मैं परतन्त्र,
स्वतन्त्र रसिका मैना जैसे चाहती न कोई यंत्र।
पुत्र आपका लेके जावो चले राज का तन्त्र,
सब मिल..भीष्म की ॥

तुम बिन कैसे जाऊं राज्य मे शून्य लगे संसार,
गंगकुंवर को मात विरह से होगा दुख अपार।
तुम आने से कुशल क्षेम हो सुधरे सब हुंकार,
सब मिल..भीष्म की ॥

मैं नहीं आऊं महल मे सुनलो मम महाराज
मेरी प्रतिज्ञा पै कायम मैं करूं न दूजा काज।
त्याग प्रतिज्ञा सुख को भोगे उससे लाती लाज,
सब मिल..भीष्म की ॥

घोर जगल मे छोडूं आपको भोगूं राज सुखसार,
ऐसा जीवन मैं नही जीऊ बोला गगकुमार।
छोड़ मात की सेवा भोगे राज्य उसे धिक्कार,
सब मिल..भीष्म की ॥

इधर महल की छत पर खड़ी हुई गंगा यह दृश्य देख रही थी। बीच में पड़ना ठीक नहीं है, यह सोचकर थोड़ी देर वह चुपचाप देखती रही। लेकिन जब उसने अपने पुत्र

अपने पिता से कभी न लड़ना इससे होता नाश,
सब मिल ....भीष्म की ॥

तेरे कहने से मैं मानूं ये हैं मेरे तात,
मम शरणागत को ये मारें कैसे जोडूं हात ।
शत्रु सम ये मुझे देखते सुन लो मेरी बात,
सब मिल ....भीष्म की ॥

अतिशय क्रोधित देख पुत्र को गई पति के पास,
पिता-पुत्र का युद्ध देख कर मैं हो गई उदास ।
क्षमा करो अपराध नाथ ! यह पुत्र आपका खास,
सब मिल ....भीष्म की ॥

निज पत्नी को देख अचानक स्तब्ध बने महाराय,
अति आदर दे मिले रानी से हर्षित हो सुख पाय ।
पिता कार्य को देख कुंवर भी आके शीश नमाय,
सब मिल ....भीष्म की ॥

पत्नी पुत्र का देख विनय रानी से पूछे बात,
कैसे आके रही यहां कहो सुत का सब वृत्तांत ।
युद्ध-कुशलता देख बाल की चकित बना साक्षात,
सब मिल ....भीष्म की ॥

लेके पुत्र को गई पिता घर पढा वहीं पर बाल,
विद्याधर सुत इसके तेज को सह न सके तत्काल ।
छोड़ पिता घर रहूं यहां पर सुखे विताऊं काल,
सब मिल ....भीष्म की ॥

अठाविस योजन का मण्डल करके गंगकुमार,
सभी जीव की रक्षा करता मैत्री भावना धार ।

चलाकर उनकी अवज्ञा करता है। पुत्र, यह तेरे लिए अनुचित है।

गगकुमार बोला—माता, तुम्हारा कहना यथार्थ है। मुझे ऐसा ही करना चाहिए, जैसा तुम कहती हो। मगर इस समय जो प्रसंग उपस्थित है, उसे ध्यान मे रखते हुए ऐसा करना सम्भव नही है। मैं किसी का अन्याय सहन नहीं कर सकता, फिर अन्याय करने वाला पिता ही क्यो न हो! वैसे तो मुझसे जो बड़े हैं, सभी पिता के तुल्य हैं, लेकिन अन्याय का प्रतिकार करते समय यह सम्बन्ध नही रह सकता। इस समय राजा पिता नही शत्रु बन रहे हैं।

गगा ने सोचा—गंगकुमार इस समय वीर-रस में डूबा हुआ है। वह मेरी सुनता नही जान पड़ता। अतएव पति के पास जाकर उन्ही को समझाने का यत्न करूं। मैं उनसे जाकर कहूगी कि पुत्र अगर अपना धर्म त्याग दे तो क्या पिता को भी अपना धर्म तज देना चाहिए?

गंगा राजा शान्तनु के पास पहुची। गगा को आती देख शान्तनु सोचने लगे—यह कौन महिला मेरी ओर आ रही है? गंगा-सी जान पड़ती है। गंगा जब कुछ निकट पहुंची तो राजा ने उसे पहचान लिया। गंगा को पहचानने के साथ उसे यह भी ध्यान आ गया कि इसी वन में तो गंगा के साथ मेरा विवाह हुआ था! जान पड़ता है, यह पराक्रमी बालक मेरा ही पुत्र है और इसी कारण मेरे हृदय मे इसके प्रति स्नेह उमड़-उमड़ आता है।

गंगा जब समीप आ गई तो शान्तनु जैसे विह्वल हो

की वीरता की परीक्षा कर ली और यह देख लिया कि राजा इस समय बहुत उलझन में पड़े हुए हैं, तब उसने गंगकुमार को शान्त करने का विचार किया।

गंगा तत्काल महल की छत से उतर कर नीचे आई। गंगकुमार के पास पहुंची। उसने पहुंचते ही कहा—"पुत्र, हो तो वीर मगर क्या पिता के साथ युद्ध करना चाहिए?"

गंगकुमार चकित रह गया। कहने लगा—क्या यह मेरे पिता हैं?

गंगा—हां, बेटा! यह तुम्हारे पिता हैं।

गंग०—मैं आपकी बात पर विश्वास करता हूं, लेकिन क्षत्रियोचित शिक्षा आपने ही मुझे दी है। कोई भी क्यों न हो, जब वह शत्रु बन कर सामने आया हो तो उसके साथ दूसरा सम्बन्ध कैसा! इनकी दृष्टि में वन के जीव चाहे तुच्छ हो पर मेरी दृष्टि में तो वे महान् हैं। मैंने महाराज से प्रार्थना की कि यह जीव मेरे आश्रित हैं। इन्हें मत मारिये। मगर इन्होनेमेरी प्रार्थना की उपेक्षा की। इन्होने यह भी कहा कि यह सब भूमि मेरी है। मैं तुझे दया करके रहने देता हू। लेकिन इन पशुओं के सम्बन्ध मे तुझे सोचने का अधिकार नही है। इतना ही नही, महाराज ने मुझे अपने बाणों की भी धमकी दी। बाण चला भी दिया। मां, तुम्हारा कहना सच है कि पिता के साथ युद्ध करना उचित नही है। किन्तु मैं युद्ध के लिए विवश किया गया हूं। मेरे पास और चारा क्या था?

गंगा ने अपने पुत्र से कहा—पिता को देव के समान मानकर हाथ जोड़ने चाहिए। लेकिन तू पिता पर बाण

गंगा—महाराज, आपका व्यसन गहरा है। वह छूट नही सकता। आप गंगा और मृगया मे से मृगया को ही अधिक प्यार करते हैं। अगर आपके हृदय मे मेरे प्रति स्नेह होता तो मेरे वियोग में आपने यह व्यसन त्याग दिया होता। इसी से तो मैंने आशंका प्रकट की थी कि पुरुष अपने वचन का पालन नहीं कर सकते। वह जो कुछ कहते हैं, ऊपर से कहते हैं। मेरी यह आशंका आपने सत्य सिद्ध कर दी। लेकिन बाते फिर हो सकेंगी। आप थके हुए हैं। घर चल कर विश्राम कर लीजिए। रूखा-सूखा खा-पी लीजिए।

शान्तनु—तुम मेरे यहा चलने को राजी नहीं हो तो मैं तुम्हारे साथ कैसे चल सकता हूं ?

गंगा—रहने भी दो ! मैं अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हूं, क्या आप भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हैं ? आपके यहां चलने से मेरी प्रतिज्ञा खण्डित होती है, मगर मेरे यहां चलने से आपकी प्रतिज्ञा खंडित नही हो जाएंगी। इसलिए चलिए, शेष बातें वही हो जाएगी।

शान्तनु ने चिर-तृषित नेत्रो से गगकुमार की ओर देखा। वह नीची दृष्टि किये बगल मे खड़ा था। माता को जाने के लिए उद्यत देखकर उसने पिता की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखा, मानो वह भी चलने की प्रेरणा कर रहा था। इसके बाद गंगा के पीछे-पीछे पिता-पुत्र उसके निवास-स्थान की ओर चल दिये।

कुछ देर विश्रांति लेने के बाद राजा ने फिर वही प्रसंग छेड़ दिया। राजा कहने लगा—गंगा, अवश्य ही मैं रास्ता चूक गया हूं। मगर चूक भी कभी-कभी भलाई के लिए होती

उठा । उसके मुख से सिर्फ यही शब्द निकल सके—"गंगा, तुम यहां हो ?"

गंगा—"और महाराज यहां कैसे ?"

गंगा ने आगे कहना आरम्भ किया—मैं अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए आपके यहां से रवाना होकर पिताजी के घर पहुंची थी । वहां से आकर अब यहां रहती हू । यहां रह कर गंगकुमार ने प्राणीमात्र के प्रति निर्वैर–भाव प्राप्त किया है । मैं भी निर्वैर–भाव से रहती हूं और पुत्र भी । मैं आपसे यह प्रार्थना करने आई हूं कि यह आपका ही पुत्र है । इस पर दया कीजिए । हो सके तो वन के इन पशुओं पर भी दया कीजिए ।

गगा का कथन सुनकर शान्तनु के हृदय में कैसे-कैसे भाव जागृत हुए, यह कहना कठिन है । उसके मानस चित्रपट पर बड़ी तेजी के साथ उसके अतीत जीवन की घटनाएं घूम गई । वह अपराधी की तरह मन ही मन लज्जित हुआ और बहुत दिनों से खोये हुए पत्नी–पुत्र को सहसा पाकर प्रसन्न भी हुआ । उसने कहा—देवी, मैं भाग्यशाली हूं कि मैं तुम्हें और साथ ही अपने पराक्रमी पुत्र को देख सका । मैं तुम्हारे वियोग से दु.खी था । लेकिन आज की यह घड़ी बड़ी शुभ सिद्ध हुई कि तुम भी मिली और पुत्र भी मिला ।

गगा ने बीच मे टोक कर कहा—मेरे प्रति आपका मोह वृथा है ।

राजा—क्यो देवी, क्या जन्म भर रूठी रहोगी ? क्या एक बार का मेरा अपराध क्षमा नहीं हो सकता ?

हुआ कि संसार में पश्चात्ताप ही सार है । संसार के सब पदार्थ निस्सार हैं । माता किसी दूसरे काम मे लगने के लिए अपने बालक को खिलौना देती है । जो बालक खिलौने पर ललचा जाता है उसकी माता उसे छोड़कर चली जाती है । जो नही ललचता उसकी माता उससे कैसे छूटेगी ? संसार में पति, पत्नी, पुत्र आदि सब खिलौने हैं । इन खिलौनों पर ललचाने वालो से सिद्धि माता छूट जाती है । लेकिन जो इन खिलौनों का महत्त्व त्याग देता है वही सिद्धि-माता की शाश्वत सुखमयी गोदी में रमण करता है, यह बात मैंने समझ ली है । अब रानी बनने और संसार के सुख भोगने की इच्छा नहीं रही । अतएव महाराज ! मेरी धृष्टता के लिए क्षमा करें ।"

"हां, यह बालक आपका ही है । इस पर आपका अधिकार है, मेरा नही । मैंने आपकी धरोहर के रूप में इसे संभाला है । अब आप अपनी धरोहर को संभाल सकते हैं । इस बालक को मैंने क्षत्रियोचित शिक्षा दी है । अपनी शिक्षा की परीक्षा वह दे ही चुका है । यह आपकी सेवा करेगा और राज्य की रक्षा भी करेगा । आप चाहे तो इसे ले जा सकते हैं । मैंने अपना दूसरा पथ चुन लिया है । जिस ओर जा रही हूं, उसी ओर जाने दीजिए । मेरा मोह छोडिये । परमात्मा मे मन लगाइए ।

राजा ने कहा—देवी, मैं समझ गया कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहती हो । इसमें कोई हर्ज नही है । लेकिन महल मे चलकर रहो तो क्या बाधा है ?

गंगा—ब्रह्मचर्य की साधना करने वालो के लिए वन-वास

है। मैं एक बार मृगया के लिए आया था, तब तुम्हे पा सका। अब की बार आया तो फिर तुम्हे पाया और साथ ही राजकुमार को भी। इस प्रकार इस मृगया के कारण ही मैंने तुम्हे पाया, खोया और फिर पाया है। अब तुम्हें पाकर खोने की इच्छा नही है। इसलिए अपने निर्णय पर एक बार फिर विचार करो। मैंने अपने कार्य के लिए बहुत पश्चात्ताप किया है।

पति के इस आत्म-निवेदन ने एक बार गंगा के हृदय मे उथल-पुथल मचा दी। वह किकर्त्तव्यमूढ़ हो गई। भावनाओ के तूफान से वह हिल गई। उसे सूझ नही पड़ता था कि राजा के इस कथन का वह क्या उत्तर दे ?

विषय-वासनाओ ने गंगा को कभी परास्त नही किया। संयम सदैव उसके जीवन का सहचर रहा। जब वह हस्तिनापुर के राजमहल में थी, तब भी वह भोग-विलास की गुलाम नही बनी। यही कारण था कि क्षण भर के लिए भी उसके मन मे दुविधा नही हुई और वह सहजभाव से राजमहल को त्याग कर चली आई। ऐसी थी गंगा, जिसनें आसक्ति पर पूरी विजय पा ली थी।

आज राजा के पश्चात्ताप को देखकर भी उसके अन्तःकरण में मोह का स्पर्श नही हुआ। सिर्फ स्त्री सुलभ कोमल-भाव उसके हृदय में उत्पन्न हुआ, जिसे विकारहीन स्नेह, आसक्ति-शून्य दया और मोह हीन ममता कहा जा सकता है। इस अवस्था में भी गगा आत्म-विस्मृत नहीं हुई। मोह उसके विवेक को सुप्त नही कर सका।

राजा के कथन का गगा ने उत्तर दिया—"मुझे मालूम

कुछ दिनों बाद स्त्री स्वस्थ हो गई। दूसरी तरफ पति के पास कुछ धन बढ गया। धन बढ़ जाने पर पुराना मकान, पुराने मित्र और पुरानी पत्नी प्रायः अच्छी नहीं लगती। यही बात इस पुरुष के विषय में हुई। उसने अपनी पहली पत्नी के रहते दूसरा विवाह कर लिया। यह श्मशान का वैराग्य नहीं तो क्या है!

गंगा से निराश होकर राजा शान्तनु अत्यन्त उदास, विषादमय और लज्जित हुए। अन्त में उन्होने गंगकुमार से हस्तिनापुर चलने के लिए कहा। गंगा ने भी राजा का समर्थन किया। लेकिन गंगकुमार ने कहा—"मैं माता को जंगल में छोड़कर राज्य-सुख भोगने के लिए नही जा सकता। जिस माता ने मेरे लिए भीषण से भीषण कष्ट सहन किये हैं, आज उसे त्याग कर मैं कैसे जा सकता हूं ?

गगकुमार की बात यथार्थ थी। दूसरी माता होती तो अपने पुत्र के मुख से यह बात सुनकर प्रसन्न होती। पर गंगा और ही तरह की माता थी। उसने सोचा—मेरा पुत्र मेरी असलियत को, मेरे सामर्थ्य को, ठीक तरह नही जानता, इसी से ऐसा कहता है। इसे समझाना चाहिए। यह सोच-कर गंगा ने कहा—

मेरी रक्षा मैं ही करूंगी नहि कायर तू जान,
मात-मोह में पड कर तुझको होना नहीं वेभान।
पितु-सेवा औ राजकाज मे तज दो तन धन प्रान,
सब..भीष्म की ।।

गंगा कहने लगी—वत्स! यद्यपि तेरे शब्दो में मातृभक्ति

ही उचित है। वन की महिमा का मैं बखान नहीं कर सकती। इसी वन में आपका और मेरा प्रथम मिलन हुआ था। इसलिए भी मुझे यही वन अधिक प्रिय है। मेरे लिए हस्तिनापुर और वन में कोई भेद नहीं रह गया है। राजमहल मेरे आकर्षण की चीज नहीं रहा।

शान्तनु—देवी, तुम्हारे विचार अत्यन्त उच्च और पवित्र हैं। उन्होंने मेरे हृदय में भी एक नवीन भावना उत्पन्न कर दी है। मैं सोचता हूं—अब मेरे लिए भी दूसरी पत्नी नही है।

गंगा—महाराज, कदाचित् ऐसा ही हो। मगर विषय-वासना की जड़ बड़ी गहरी होती है। उसे उखाड फेंकने पर ही विरक्ति स्थायी हो सकती है। मगर उसे उखाड़ फेंकना बड़ा ही कठिन काम है।

एक जगह पढ़ा था—किसी आदमी की पत्नी बीमार हुई। बीमारी की घबराहट में स्त्री ने अपने पति से कहा—"नाथ, अब मैं जाती हूं।"

पति ने कहा—अच्छा, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि तुम्हारे सिवाय मेरी दूसरी पत्नी नहीं है।

पत्नी—यह तो सिर्फ कहने भर के लिए है।

पति—नही, मैं सच कहता हूं। तुम चाहो तो परीक्षा ले सकती हो। कहो तो तुमसे पहले ही अपने प्राण दे दूं।

पत्नी—इस समय आपके वचनों में वीरता है, लेकिन आप इतनी ही कृपा करना कि मेरे रहते दूसरी स्त्री मत लाना

अपने प्रति निश्चिन्त निस्पृह और निरपेक्ष हैं। न जानें इनके व्यक्तित्व का निर्माण किन उपादानो से हुआ है ! माता धन्य हैं और मैं उनका पुत्र होने के कारण धन्य हू ।

गंगा ने चेष्टा से समझ लिया कि गगकुमार अब विरोध नही करेगा । उसने कहा—पुत्र, तू बुद्धिमान् है । फिर भी दो शब्द कहती हू । माता का हृदय है । कुछ दिये विना वह पुत्र को विदा नही कर सकती । मेरे पास कोई ऐसी सौगात नही जो इस प्रसंग पर तुझे भेट दे सकू । फिर भी मैं जो कहती हू उसका आर्थिक मूल्य चाहे न हो, पर जीवन-सम्बन्धी मूल्य बहुत है । इसलिए मेरी ये बातें तू मंत्र की तरह याद रखना ।"

गंगा अपने पुत्र को जो अन्तिम उपदेश देना चाहती है, उसे सुनने से पहले आपको थोडा विचार कर लेना चाहिए । गंगा और गगकुमार की कथा सिर्फ उन्ही के लिए नही है । उनका आपस का वार्तालाप उनके लिए नही वरन् आपके उपयोग के लिए ही है । भीष्म, पितामह कहलाते हैं । पितामह होने के नाते उनकी वस्तु सभी की विरासत मे है । इस प्रकार गंगा के द्वारा उन्हे जो शिक्षा मिली है, वह शिक्षा भी आपके लिए है । आप उस शिक्षा को हृदय में धारण करो । और अपनी शक्ति के अनुसार अनुसरण करो तो निस्सदेह आपका कल्याण होगा ।

गंगा का कथन सुनकर गगकुमार उत्सुक होकर, हाथ जोड़कर नम्रता के साथ माता के सामने खड़ा हो गया । माता कहने लगी—

है, लेकिन साथ ही उनसे प्रकट होता है कि तू भ्रम में है। तेरे शब्दो से ध्वनित होता है, जैसे तू ही मेरी रक्षा कर रहा है ! परन्तु यह तेरी भूल है । तेरे जन्म से पहले भी मैं इस वन में रहती थी । उस समय मेरी रक्षा कौन करता था? बेटा, मैं तेरे जैसे वीर पुत्र की माता हूं। मैं कायर होती तो तू वीर कहां से हो जाता ? मेरे लिए रक्षक की आवश्यकता नहीं है । मुझे अपनी रक्षा और सेवा की तनिक भी चिन्ता नहीं है । सिंहनी अपनी रक्षा आप कर लेती है। तू मुझे भी ऐसी ही समझ। मेरी रक्षा की चिन्ता छोड़ दे । प्रजा की रक्षा का भार अपने माथे ले और पिता का भार कम कर । प्रजा-पालन के अवसर पर माता की सेवा करने का बहाना करना कायरता है । प्रजा का पालन करना तेरा कर्त्तव्य है। अपने कर्त्तव्य को संभाल । पिता के साथ जाकर अपनी सब शक्तिया प्रजा की रक्षा मे व्यय कर । जब तेरे पिताजी को किसी प्रकार का मोह हो तब उन्हें सावधान करना और ऐसा प्रयत्न करना कि उन्हें सुख और सन्तोष मिले ।

माता की बात का गंगकुमार कुछ उत्तर नही दे सका। माता ने जिस ढंग से उसे पिता के साथ जाने का आदेश दिया, उसमे कहने-सुनने की कोई गुंजाइश न रही । गंगकुमार का हृदय मातृवत्सलता से गद्‌गद् हो गया । उसने माता का आज जो स्वरूप देखा, पहले कभी नही देखा था । श्रद्धा से हृदय भर गया । वह माता के सामने नीचा सिर किये चुपचाप खड़ा रहा । सोचने लगा—माता क्या हैं, उत्सर्ग की देवी है । त्याग की प्रतिमा है। वलिदान की सजीव मूर्ति है । इनका आत्मोत्सर्ग कितना विराट और उत्कट है । साक्षात् शक्ति हैं । जगत् की रक्षा के लिए व्यग्र हैं और

को मिले। अब तू पिता के साथ जा रहा है और सम्भव है कि राज्य सचालन का उत्तरदायित्व भी तेरे सिर आ जाए, इसलिए मैं उपदेश के तौर पर कुछ कहना चाहती हू।

"पहली और प्रधान बात यह है कि चाहे सुख का समय हो, चाहे दुःख का हो, चाहे सम्पत्ति हो या विपत्ति हो, परमात्मा को मत भूलना। परमात्मा को सदा याद रखना।"

घड़ी मे एक बार चाबी भरी जाती है, फिर भी वह बहुत समय तक चलती रहती है। उसमे हर समय चाबी भरते रहने की आवश्यकता नही पड़ती। किसी घड़ी मे दिन में एक बार, किसी मे सप्ताह मे, किसी में महीने मे और किसी में वर्ष में एक बार ही चाबी देनी पड़ती है। फिर भी घड़ी नियत समय तक चलती रहती है। अगर कोई घडी चाबी देते समय चले और चाबी देना बन्द करते ही बन्द हो जाय तो यही कहा जायगा कि यह घडी खोटी हो गई है। इसी तरह जितनी देर परमात्मा का भजन किया जाय, उतनी ही देर वह स्मरण मे रहे और फिर याद न रहे—जीवन व्यवहार के समय विस्मृत हो जाय तो वह परमात्मा का सच्चा भजन नही कहा जा सकता। घडी मे चाबी भरने के समान, एक बार परमात्मा को नमन करके जो पुरुष सदैव परमात्मा को स्मरण रखता है, वह कभी पापकर्म नही कर सकता। ऐसा ईश्वरभक्त कभी परस्त्री और परधन की तरफ बुरी दृष्टि भी नही डाल सकता।

गगा कहती है—"अगर तू परमात्मा को नमन करता रहे और उसे भूले नही तो समझ लेना कि मेरी-तेरी जुदाई नही है—मैं तेरे समीप ही हूं। तू जो भी कुछ करे, ईश्वर

मौन पकड़ जब रहे कुंवर तब बोली माता हर्षाय,
ईश-भक्ति में मन रहे नित अहंभाव न आय।
नम्र रहो अभिमान त्याग कर जिन-गुण नित ही गाय,
सब...भीष्म की ॥

दीन जनों पर प्रेम करो तुम सत्य वचन सुखकार,
सुत सम पालो सदा प्रजा को सज्जन जन सत्कार।
तुम ब्रह्मचर्य व्रत पालोगे तो होओगे भव-पार,
सब...भीष्म की ॥

यो तो ये पंक्तियां गंगकुमार के लिए गंगा कह रही है, परन्तु वास्तव में गंगा और गंगाकुमार तो निमित्त हैं। उन्हें निमित्त बनाकर आपको यह उपदेश दिया गया है। गंगा ने गंगकुमार को क्या उपदेश दिया था, इसका कोई इतिहास नही है। फिर भी जो उपदेश हम पाते हैं, वह ऐसा उपदेश है कि सदाकाल उसकी समान रूप से आवश्यकता है। किसी भी काल में वह निरुपयोगी नहीं है, क्योंकि उसमे धर्म का तत्त्व समाया हुआ है और धर्मतत्त्व शाश्वत है। यह उपदेश अतीत काल मे भी कल्याणकारी था और उसी तरह आज भी कल्याणकारी है। वह गगकुमार के लिए भी उपयोगी था और आपके लिए भी उपयोगी है। इसलिए आप एकाग्र चित्त से उस पर विचार करें और फिर जीवन-व्यवहार में उतारें।

हाथ जोड़कर विनीत शिष्य की भाति नम्र-काय खड़े हुए गंगकुमार से गंगा कहने लगी—हे पुत्र! मैंने तुझे जन्म दिया है और पाला-पोसा है। इसमें मेरी एक प्रधान भावना यह थी कि मैं तेरे लिए जो कुछ कर रही हूं उसका लाभ जगत्

है । लेकिन जैसे लोग शुद्ध हवा और पानी का महत्त्व भूल रहे हैं, वैसे ही आप इस उपदेश के महत्त्व को न भूलें । इसे हृदय मे स्थान दें और अपना कल्याण करें ।

गगा कहती है—"पुत्र ! राज्य दीन जनो को चूसने के लिए नहीं है । सबल से निर्बल की रक्षा करना ही राज्य-व्यवस्था का उद्देश्य है । इसी उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए राजा की आवश्यकता है । अब तक तूने इस वन मे रहकर पशुओ और पक्षियो की रक्षा की है, मगर अब तेरे कधों पर भारी बोझा आ रहा है । अब तुझे सबल से निर्बलो की रक्षा करनी होगी । संसार के समस्त झगडो की जड़ क्या है ? असली जड का पता लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि सबलों द्वारा निर्बलो का सताया जाना ही सब झगड़ों का मूल है । तू सताये जाने वाले निर्बलों का समर्थ सहायक बनना, यही मेरा उपदेश है और यही मेरा आशीर्वाद है ।"

गंगा फिर कहती हे—"हे पुत्र ! तू दीन जनों पर अनुकम्पा करना । अनेक दीन तेरी अनुकम्पा की प्रतीक्षा करते हैं । ऐसे समय मे तुझे मैं अपनी गोद मे कैसे छिपाए रख सकती हू ? सूर्य अपने मंडल मे ही छिपा रहे तो उसकी कद्र कैसे हो सकती है ? अपने मडल के बाहर निकलने से ही उसकी कद्र है । इसी मे उसकी सार्थकता है । तेरी शक्ति की सार्थकता भी इसी मे है कि तू दीन-हीन जनों की अनुकम्पा करने के समय घर में ही घुसकर न बैठा रहे । उनकी रक्षा करने के लिए बाहर निकल पड़े । समय आने पर सभी को बाहर निकलना पडता है और जो बाहर नहीं निकलता उसे संसार मे कोई नही पूछता । और हे पुत्र !

को स्मरण करके ही करना । ऐसा करने से किसी भी कार्य के विषय मे तुझे अहकार नहीं होगा । और अहकार त्याग कर नम्र बनना आवश्यक है । अपने चित्त मे किसी भी दिन और किसी भी कारण से अभिमान का उदय मत होने देना । ईश्वर को वही प्रिय है जो नम्र है । तुझे भी वही वृक्ष अच्छा लगता है जो फलयुक्त होकर नम्र हो जाता है । इसलिए नम्रता धारण करना ।"

नम्र होने का अर्थ यह नही कि अपने मे हीनता आने दी जाय । पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज अकसर कहा करते थे कि मनुष्य को न तो पानी जैसा ही होना चाहिए और न पत्थर जैसा होना चाहिए । मनुष्य को बीकानेरी मिश्री जैसा होना चाहिए । बीकानेरी मिश्री अगर फैंक कर मारी जाय तो चोट पहुचाती है, और अगर मुंह मे डाली जाय तो मिठास देती है । इसी प्रकार मनुष्य को सद्गुणो के प्रति नम्र और दुर्गुणो के प्रति कठोर होना चाहिए ।

आप यह न सोचें कि गंगा की यह शिक्षा साधुओं के लिए ही है, गृहस्थ इसका पालन नही कर सकते । ऐसा समझना भयानक भूल है । गगकुमार साधु नही हो रहा था । वह राज्य के सचालन के लिए जा रहा था । राज्य-संचालन के लिए यह शिक्षा दी गई है । जैसे अन्न और प्रकाश सभी के लिए हितकारी होता है, उसी प्रकार यह शिक्षा भी सब के लिए हितकारी है । इस शिक्षा को जो जितने अशो मे ग्रहण करेगा वह उतने ही अशो मे लाभ उठा सकेगा । जैसे शुद्ध हवा और पानी का मूल्य न होने के कारण वे अनमोल हैं—उनका मूल्य हो ही नही सकता, इसी तरह यह शिक्षा भी अनमोल

गुलिश्तां में कहा है—सज्जनों के साथ अन्याय करके दुर्जनों का पक्ष लेने वाला सज्जनों का नाश करता है, वास्तव में यह बात सत्य है। अनेक प्रमाणों द्वारा इसकी सत्यता सिद्ध की जा सकती है। विभीषण रावण का भाई होकर भी राम के पास क्यो गया था ? इसलिए कि उसे भाई की अपेक्षा सज्जनता अधिक प्रिय थी। वह रावण को पिता के समान मानता था। उसने रावण को शक्ति-भर समझाया भी था। फिर भी जब रावण नही माना तो सज्जनता की रक्षा के लिए वह राम के पास चला गया।

गंगा ने गगकुमार से कहा था—"मैं इस समय सूत्र रूप मे जो शिक्षा तुझे दे रही हूं, उसे याद रखना।" गंगा की शिक्षा के प्रताप से ही भीष्म न्यायप्रिय हुए। यद्यपि वह अन्यायी कौरवो के साथ रहे फिर भी पाण्डवो के प्रति उनके हृदय में स्नेह का भाव था। समय-समय पर वह दुर्योधन को समझाया भी करते थे। इस प्रकार शरीर से कौरवो के साथ होते हुए भी वे हृदय से सज्जनो का सत्कार करते थे। उन्होने सदा पाण्डवो का हित ही चाहा था।

आज तो लोग यह समझते हैं कि चाहे सो हो, मगर पुत्र के हाथ पीले हो जाएं अर्थात् पुत्र का विवाह हो जाय। घर मे बहू आ जाय तो मानो कृतकृत्य हुए। इस प्रकार सन्तान को विवाहित देख कर लोग फूले नही समाते। मानो मनुष्य जीवन का सार विवाह कर लेना और सन्तान उत्पन्न करना ही है ! यह कितनी हीन मनोदशा है ! लेकिन गंगा अपने पुत्र को अखण्ड ब्रह्मचर्य पालने की शिक्षा देती है। वह कहती है—पुत्र, अगर तू ब्रह्मचर्य पालन करेगा तो सारे

तू सदा सत्य का ही पक्ष लेना । असत्य से दूर रहना ।"

बहुत-से लोग अकसर असत्य का पक्ष ले बैठते हैं। जरा-सी कठिनाई आई कि सत्य को धता बता देते हैं और असत्य को अंगीकार कर लेते हैं। ऐसे लोगो को मार्ग बतलाने के लिए शास्त्र में अरणक (अर्हन्नक) श्रावक का चरित बतलाया गया है । अरणक श्रावक का जहाज डूब रहा था। जहाज के सभी मुसाफिर कह रहे थे कि जहाज डूब जाने से सभी लोग डूब मरेंगे । सब को बचाना है तो सत्य को छोड़ दो । लेकिन अरणक ने कहा—सत्य पर दृढ रहने वाले का जहाज नहीं डूबा करता । जहाज उसका डूबता है जो सत्य से भ्रष्ट हो जाता है । और वह सत्य पर अटल रहा । अरणक सोच सकता था कि सभी लोग सत्य को त्यागने का आग्रह कर रहे हैं। सत्य को त्यागने से इस समय मेरी बदनामी नही होगी, वरन् यह सब मुसाफिर मेरी प्रशंसा करेंगे। फिर भी उसने ऐसा नहीं सोचा और अन्त तक वह दृढ रहा। जैसे अरणक दूसरों के आग्रह करने पर भी सत्य से विचलित नही हुआ—सत्य से चिपटा रहा, उसी प्रकार आप भी सत्य को मजबूत पकड कर बैठे रहे । सत्य की अवहेलना न करें । सत्य की अवहेलना करना अपनी आत्मा के सच्चे विवेक की अवहेलना करना है ।

गंगा कहती है—'पुत्र ! तुझे दूसरे का कल्याण प्रिय है । इसलिए मैं तुझे छोड़ रही हूं । तू मेरा उद्देश्य पूर्ण करना । पुत्र के समान प्रजा का पालन करना। सत्पुरुषों का सत्कार करना । दुर्जनो से दूर रहना । दुर्जनो का सत्कार पुरस्कार करना सज्जनता का नाश करना है ।"

तो फिर क्यो इस ओर उपेक्षा की जाती है ? माता-पिता द्वारा प्रारम्भ मे डाले गए संस्कारों को देव भी बिगाड़ने में समर्थ नहीं हो सकता । अतएव गगा के द्वारा दी हुई शिक्षा की तरफ ध्यान देकर बालक को सुसंस्कारी, सदाचारी, धर्मपरायण और कर्त्तव्यशील बनाना ही उचित है । गगा फिर कहती है—

निष्काम वृत्ति को धार करो तुम राज-काज व्यवहार,
निर्विकार चित्त मे मत आने देना कभी विकार ।
स्फटिक मणि सम निर्मल रहना जिससे होवे सुधार,
सब मिल ....भीष्म की ॥

विनय सहित कर श्रवण वचन वह बोला गगकुमार,
भाग्यशाली मैं हुआ आज जो पाया शिक्षा सार ।
तब आज्ञा अनुसार रहूगा नही लोपूंगा कार,
सब मिल..भीष्म की ॥

विधिवत् वदन करके मात को चलन हुए तैयार,
आशीर्वाद तब दिया मात ने धर्म बढ़ा सुखकार ।
हर्ष शोक अश्रु की दृष्टि से देखे राय असवार,
सब मिल..भीष्म की ॥

पुत्र पति को समझा करके भेजे राय के ताय ?
किसी तरह से मन बहलाते आये शहर के मांय ।
स्वतन्त्र वन मे रहे गगाजी सुखमय समय बिताय,
सब मिल..भीष्म की ॥

गंगा कहती है—"पुत्र ! जिनका हृदय निर्बल होता है, उन्हे सत्ता का नशा बहुत जल्दी चढ़ जाता है । सत्ता पाकर और उसके नशे में बेभान होकर सत्ता का दुरुपयोग

संसार का कल्याण कर सकेगा और मेरी कोख को धन्य बनाएगा।

आज कौन मानने को तैयार है कि ब्रह्मचर्य पालने के लिए सन्तान को शिक्षा देना उचित है ? लेकिन गंगा उसे उचित मानती थी और इसी कारण उसने गगकुमार को ब्रह्मचर्य पालने की शिक्षा दी है। भीष्म को जैन और जैनेतर सभी ब्रह्मचारी स्वीकार करते हैं। अतएव गंगा के उपदेश को ध्यान में रखो और यह भावना रखो कि हमारी सन्तान अगर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन कर सके तो अच्छा ही है, अन्यथा कम से कम देशत: शीलव्रती तो उसे बनाएं ही। इस प्रकार भावना रखकर सन्तान को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने से और उसके चारो ओर का वातावरण उसी प्रकार का बनाने से उसका भी कल्याण होगा, आपका भी कल्याण होगा और जगत् का भी होगा।

दूसरी माताएं तो काम के समय अपने पुत्र को छिपाने लगती हैं, लेकिन गंगा अपने पुत्र को कार्य का भार उठाने की प्रेरणा करती है। वह समझती है कि रत्न की कीमत समुद्र या खजाने में पड़े रहने पर नहीं हो सकती। जौहरी के हाथ में पहुंचने पर ही रत्न की कीमत होती है। इसी प्रकार गंगकुमार की कीमत यहां बने रहने से नहीं होगी, किन्तु पिता की सेवा करने से और अपने धर्म का पालन करने से होगी।

जब बालकों का सुधार और बिगाड बहुत अंशो में माता-पिता के ही हाथ में है और प्रत्येक माता-पिता अपने बालक को सुधारना चाहता है—कोई बिगाड़ना नही चाहता

है, फिर भी इसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेंगे और मेरे भव-भ्रमण का अभी अन्त ही नही है ! उसे विश्वास हो गया कि भगवान् ने पक्षपात करके यह उत्तर दिया है। भरतजी उसके मन की बात ताड़ गये । उन्होने कोई युक्ति करके उसका भ्रम दूर करने का विचार किया ।

भरत ने उसे अपने पास बुलाया । उससे कहा—"तुम्हारे मन मे यह भ्रम घुसा हुआ है कि भगवान् ने मोक्ष बतलाने मे मेरे साथ पक्षपात किया है ।"

आज का जमाना होता तो वह भरत के प्रभाव का और भगवान् के प्रभाव का खयाल करके गलत उत्तर दे देता या उत्तर ही न देता । मगर उस समय के लोग बहुत सरल स्वभाव थे । अतएव उसने कहा—हां महाराज, आपका खयाल ठीक है ।"

भरत ने कहा—ऐसा भ्रम होना अस्वाभाविक बात नहीं है । तेरे और मेरे आरम्भ में बिन्दु और सिन्धु के बराबर अन्तर है । फिर भी भगवान् ने मुझे इसी भव मे मुक्त होना बतलाया है और तुम्हारा ससार अपरिमित कहा है। भगवान् के इस कथन पर बहिर्दृष्टि वालो को सन्देह हो सकता है । यद्यपि भगवान् पूर्ण वीतराग और सर्वज्ञ हैं, उनके वचन पर सन्देह नही होना चाहिए, लेकिन सब पुरुषों की चित्तवृत्ति एक-सी नही होती । बल्कि भगवान् के वचन पर अश्रद्धा होना ही इस बात की सूचना है कि अश्रद्धा करने वाले को मोक्ष निकट नही है । खैर, तुम्हे एक काम करना होगा ।

उस पुरुष ने कहा—भला आपका काम क्यो नही करूगा ?

करने वाले लोग बहुत हैं। सदुपयोग करने वाले विरले ही दृष्टिगोचर होते है। अगर महाराज कभी तुझे राज्य सत्ता सौंपे तो तू उसका दुरुपयोग मत करना। निष्काम भाव से राज्य का संचालन करना।"

कहा जा सकता है कि निष्काम भाव से राज्य का संचालन किस प्रकार किया जा सकता है? राजा को साम, दाम, दंड और भेद की नीति से काम लेना पड़ता है। ऐसी स्थिति मे निष्काम भावना कैसे रह सकती है?

इस प्रश्न का समाधान शास्त्र मे बहुत विचार के साथ किया गया है। इसके लिए भरत चक्रवर्ती का उदाहरण भी दिया गया है। चक्रवर्ती भरत ने भगवान् ऋषभदेव से पूछा—"प्रभो! मैं कितने भवों के बाद मोक्ष प्राप्त कर सकूंगा?" भगवान् ने उत्तर दिया—भरत! तू इसी भव मे मोक्ष प्राप्त करेगा।

इस प्रश्नोत्तर के समय वहा एक और पुरुष बैठा था। उसने मन मे सोचा—भरत महाराज चक्रवर्ती हैं। इनके आरम्भ-समारंभ का ठिकाना नहीं! फिर भी भगवान् ने इन्हे इसी भव मे मुक्त हो जाना बतलाया है तो मुझे तो इनसे भी पहले मुक्ति मिल जानी चाहिए। इस तरह सोचकर उसने भी भगवान् से यही प्रश्न किया। भगवान् वीतराग और त्रिकालदर्शी थे। उन्होने कहा—अभी तेरे ससार का अन्त नही है—अर्थात् तेरा मोक्ष समीप नही है।

भगवान् का उत्तर सुनकर वह सोचने लगा—भगवान् भी पक्षपात करते जान पड़ते हैं। भरत छह खंड के राजा

जैसे-तैसे भरा कटोरा भरत के सामने लाकर रख दिया।

भरत के सामने कटोरा रख देने के बाद उसकी जान में जान आई। वह सोचने लगा—चलो, जान बची लाखो पाये !

भरत—कहो, नगरी में घूम आये ?

आदमी—जी हां।

भरत—तेल मे से बूंद तो नही गिरने दी ?

आदमी—इसमें मेरे प्राण थे। कैसे गिरने देता महाराज?

भरत—आज विनीता नगरी बहुत सुसज्जित है। देखा, कैसी सजावट हुई है ?

आदमी तेल मे प्रतिबिम्ब पडते थे और वे एक के बाद दूसरे भी बदलते जा रहे थे। मगर मेरा सारा ध्यान तो तेल की ओर था। मैं प्रतिबिम्बो को देखकर तेल को कैसे भूल सकता था ?

भरत—तुमने पुरस्कार के योग्य काम किया है। लेकिन जो बात बतलाने के लिए मैंने तुम्हे कटोरा लेकर भेजा था, वह समझे या नही ?

आदमी—मैं कुछ नही समझा। कृपा करके आप ही बतलाइए।

भरत—मैं तुम्हे यह समझाना चाहता था। विनीता नगरी आज अपूर्व शोभा धारण किये है। तुमने नगरी मे चक्कर लगाया, फिर भी नगरी के सौन्दर्य से कोई सरोकार नही रखा। तुम्हारा मन इस कटोरे में ही लगा रहा।

भरत बोले—मैं तेल से भरा एक कटोरा तुम्हे देता हू। तुम इस कटोरे को लिये-लिये विनीता नगरी मे घूम आओ, मगर तेल की एक भी बूंद इसमे से न गिरने पावे। एक भी बूंद गिरी तो ये सिपाही तुम्हारे साथ जा रहे हैं, बूंद गिरते ही तुम्हारा सिर गिरा देंगे।

इस प्रकार कह कर भरत ने उस आदमी के साथ कुछ सिपाही कर दिये। सिपाहियो से एकान्त में कह दिया गया कि इसे भय भले ही दिखाना, मगर मार मत डालना। उस दिन भरत ने विनीता नगरी खूब सजवाई थी। आदमी तेल से भरा कटोरा हथेली पर रखकर चला। वह सोचता था कि यह तेल क्या है, मेरे प्राण हैं। एक भी बूंद टपका नही कि मेरे प्राणो पर आ बनेगी। इस भय के कारण वह बडी सावधानी से, कटोरे पर दृष्टि गड़ाये, धीमे-धीमे चल रहा था। कटोरे के तेल मे सजी हुई विनीता नगरी का प्रतिबिम्ब पड़ता जाता था। वह प्रतिबिम्ब को देखता जाता था और सोचता जाता था कि यह नगरी का प्रतिबिम्ब है। अगर मैं नगरी की सजावट देखने लगा और तेल गिर पडा तो मार डाला जाऊंगा। कोई प्रतिबिम्ब अच्छा भी आता था और कोई बुरा भी। कोई सामान्य आता था और कोई विशेष भी। लेकिन उस ओर उसका कोई लक्ष्य नही था। उसकी दृष्टि का एक मात्र केन्द्र कटोरे मैं का तेल था। वह सोचता था—इस प्रतिबिम्ब के भुलावे मे पड़ना अनर्थकारी होगा।

वह आदमी जैसे-जैसे चलता जाता था, प्रतिबिम्ब भी पलटते जा रहे थे। परन्तु उसने उस ओर लक्ष्य नही दिया।

गंगा का उपदेश आत्मा को पवित्र बनाने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। जो इस पर ध्यान देगा और अमल मे लाएगा, उसका कल्याण हुए बिना नही रह सकता।

आखिर द्रवित हृदय से गंगकुमार ने गंगा को प्रणाम किया और पिता के साथ रवाना हो गया।

११ : शान्तनु और सत्यवती की भेंट

गंगकुमार हस्तिनापुर में आ गया। महाराज शान्तनु अपने इकलौते पुत्र को पाकर मानो निहाल हो गए। गंग-कुमार भी कोई साधारण पुत्र नही था! उसकी असाधारण विनम्रता, कुशलता आदि गुण देखकर शान्तनु के आनन्द की सीमा न रही। प्रजा को भी सुयोग्य उत्तराधिकारी पाकर अपार हर्ष हुआ। लेकिन गंगकुमार के हृदय की थाह ली जाय तो विदित हुए बिना नही रह सकता कि उसके हृदय के भीतरी भाग मे कोई बडा असन्तोष, कोई अभाव, घर किये बैठा है। वह बोलता-चालता है, राज-काज मे योग देता है, राजमहल मे सभी प्रकार की सुख-सामग्री उसके मनोरंजन के लिए प्रस्तुत है, किसी वस्तु की कमी नही है, फिर भी उसमे कभी आन्तरिक आह्लाद नजर नही आता। वह गम्भीर बना रहता है। यन्त्र की तरह अपने कर्त्तव्य में जुटा रहता है। उसके जीवन में एक प्रकार की नीरसता व्यापी रहती है। कभी किसी ने उसे खिलखिला कर हंसते नही देखा। मित्रमडली मे वह बैठता है लेकिन वहां भी एक अपरिलक्षित विषाद जैसे उसे घेरे रहता है। जान पड़ता है उसका शरीर हस्तिनापुर मे है और हृदय वन मे है। शरीर उसने अपने पिता की सेवा में

यही स्थिति मेरी है। मैं राज्य-सम्पदा के बीच में रहता हूं, मगर मेरा मन उसमें लिप्त नहीं होता। मेरा मन एकान्त धर्म मे ही लीन रहता है। तुमने कटोरे मे पडने वाले प्रतिबिम्बो के विषय मे माना था कि ये तो आते-जाते ही रहते हैं। इसी तरह मैं भी संसार की सुख-सामग्री को पुण्य का प्रतिबिम्ब मानता हू और यह भी मानता हू कि यह तो आते-जाते ही रहते हैं। इसमें क्या धरा है! इस विचार के कारण संसार की सर्वोत्तम सुख-सामग्री के बीच में रह कर भी मेरा मन उसमे कभी लिप्त नही होता। इसी कारण भगवान् ने मुझे इसी भव में मोक्ष प्राप्त होना कहा है। दूसरी ओर तुम हो। तुम प्रकट मे तो कम आरम्भ-समारंभ करते हो किन्तु ससार के प्रपचो मे डूबे रहते हो। इसी कारण प्रभु ने तुम्हारा मोक्ष निकट न होना वतलाया है।

भरत की यह कथा बड़े काम की है। आप भी सोच सकते हैं कि ससार के पदार्थ आते-जाते ही रहते हैं। मिलना और बिछुडना पुद्‌गलो का स्वभाव है। फिर मैं इनमें क्यो फंसूं? इस प्रकार विचार करने से हृदय के विकार दूर हो जाते हैं। चित्त की वृत्ति शात और पवित्र वनती है।

कहने का आशय यह है कि भरत छह खण्ड के अधिपति होने पर भी और राज्य की व्यवस्था करते हुए भी किस प्रकार निष्काम रहते थे! भरत की यह कथा निष्काम कर्म करने का आदर्श उपस्थित करती है।

गंगा कहती है—हे पुत्र! तू भी भरत की तरह निष्काम भाव से राज्य करना। मन मे किसी प्रकार का विकार मत आने देना।

करना भी दुर्व्यसन है। शिकारी की भी वही हालत होती है जो शराबी और सट्टेबाज की। शान्तनु प्रतापी राजा होकर भी अपने कुव्यसन का गुलाम है। वह बड़े भूमिभाग पर शासन करता है पर अपने हृदयप्रदेश पर उसका अधिकार नही है। कभी-कभी सोचता है—जिस दुर्व्यसन के कारण मुझे गगा जैसी सती और धर्मपरायण रानी से हाथ धोना पड़ा, उसके अधीन होना कितनी नीचता है! लेकिन जब उसकी चाण्डाल-चौकडी जमा होती है और वह शिकार की गुणावली का गान करती है तो शान्तनु अतीत को भूल जाता है और शिकार के लिए लालायित हो उठता है।

एक दिन की बात है। राजा शान्तनु घोडे पर बैठा हुआ अपने साथियो के साथ, यमुना के किनारे-किनारे चला जा रहा था। अचानक उसे सुगन्ध का अनुभव हुआ। राजा सोचने लगा—यह असाधारण गध किस वस्तु की होगी? मैंने तरह तरह के इत्र काम मे लिये हैं, भाति-भांति के फूल सूघे हैं, मगर इस प्रकार की गध तो कभी किसी मे नही देखी! यह कैसी मोहक सुगन्ध है?

राजा शान्तनु उस सुगन्ध पर मुग्ध होकर आगे बढा। कुछ आगे जाने पर उसने देखा—एक कन्या नाव पर खडी, नाव चला रही है। उसके रूप-यौवन को देखकर राजा दंग रह गया! वह यमुना के किनारे टकटकी लगाकर कन्या की ओर देखने लगा। वह सोचने लगा—यह रत्न यहा कैसे आया?

राजा को अपनी ओर टकटकी लगाए यहां देख कन्या को भी विस्मय हुआ। वह सोचने लगी—यह पुरुष वेष-भूषा से राजा जान पड़ता है। राजा होकर भी यह इस प्रकार पैरी

समर्पित कर दिया है और हृदय माता के चरणों में है।

महाराज शान्तनु गंगकुमार की यह अवस्था देखते है और उदास हो जाते हैं। गंगकुमार को अत्यन्त स्नेह के साथ बुलाते है, बिठलाते हैं, उससे बातें करते हैं, समझाते हैं और उसके आन्तरिक विषाद को दूर करने के सभी सम्भव उपाय करते हैं। गंगकुमार पिता के प्रति विनम्र व्यवहार करता है। लेकिन जो विषाद उसके जीवन में एक-रस हो गया है, उसे वह दूर नहीं कर सकता। यह देख शान्तनु कभी-कभी विकल हो उठते हैं। गंगकुमार की उदासीनता के लिए अपने आपको अपराधी भी समझते हैं और गंगा का स्मरण करके छट-पटाने लगते हैं मगर गंगा की कभी प्रत्यक्ष रूप से चर्चा नही करते। शायद इसलिए कि इससे गंगकुमार को अधिक कष्ट होगा !

कभी-कभी गंगकुमार सोचने लगता है—"माता ! अलौकिक त्याग और बलिदान की साक्षात् मूर्ति ! धर्म के लिए तूने पति का त्याग किया है ! पुत्र के कल्याण का विचार करके तूने पुत्र को भी त्याग दिया है। किस साधना के लिए तू वनवास कर रही है !" यह सोचते-सोचते उसका हृदय विह्वल हो जाता है। गगकुमार एक क्षण के लिए भी अपनी माता की मूर्ति को आखो से ओझल नही होने देता !

सट्टेबाज सौ-सौ शपथ खाकर भी अपनी शपथ को भग कर ही डालता है। उसे सट्टा किये विना चैन नही पडता। शराबी शराब न पीने का आज निश्चय करता है और शाम होते-होते उसका निश्चय हवा मे उड़ जाता है। सट्टा भी दुर्व्यसन है, मदिरापान भी दुर्व्यसन है। इसी तरह शिकार

सत्यवती—मैं किस काम के योग्य हूं और किस काम के लिए अयोग्य हूं, यह निर्णय करना मेरे पिताजी के हाथ मे है। मैं स्वय इसका निर्णय नही कर सकती। मैं तो—

आज्ञा गुरुणामविचारणीया।

अर्थात्—गुरुजनो की आज्ञा आख मूंद कर माननी चाहिए, इस सिद्धान्त का पालन करती हूं।

राजा—सुन्दरी, जैसा तुम्हारा बाह्य रूप श्रेष्ठ है वैसा ही आन्तरिक रूप भी। यद्यपि तुम्हारा उत्तर निरुत्तर बनाने वाला है, फिर भी कहे बिना नही रहा जाता कि तुम्हारा पिता लोभी जान पड़ता है। इसी कारण उसने तुम जैसी सुकुमारी को नाव चलाने के कठिन और सकटमय कार्य में लगा रखा है।

राजा का यह आक्षेप सुनकर सत्यवती की त्यौरियां चढ़ गई। लेकिन वह तत्काल सम्भल कर कहने लगी—आप जो कुछ कहना चाहे, मुझको ही कह लें। पिताजी के विषय मे कुछ न कहे। आपने बिना जाने-पहिचाने ही मेरे पिताजी को लोभी कह दिया! आप उन्हे लोभी कैसे कह सकते हैं? जिसने यह आज्ञा दे रखी है कि जो पैसा न दे सकता हो, फिर भी पार उतरना चाहता हो, उसे धर्मार्थ पार उतार देना, वह क्या लोभी हो सकता है? अपने पिता की इस आज्ञा की प्रतीति मे आपको करा सकती हूं। आप पार चलना चाहते हो तो चलिए। कुछ लिए बिना ही मैं आपको परले पार पहुचा दूंगी।

शान्तनु राजा है। फिर भी उसे सत्यवती की बात सुनकर दंग रह जाना पड़ा। वह सोचने लगा—यह कन्या

और निहार रहा है ! कन्या इस आश्चर्य मे डूबी है और राजा इस आश्चर्य में डूबा है कि इतनी असाधारण रूप-राशि की स्वामिनी यह कन्या नाव कैसे चला रही है ?

राजा और कन्या अपने-अपने मन में इस प्रकार के विचार करने लगे । कन्या जब समीप आई तब राजा शान्तनु उससे कहने लगा—सुभगे ! क्या मैं तुम्हारा परिचय पा सकता हू ? मेरे सामने बोलने मे तुम्हें संकोच न हो तो तुम्हे अपना परिचय देने की याचना करता हूं ।

राजा के इस भाति सम्मानपूर्ण शब्द सुनकर कन्या, जिसका नाम सत्यवती था, आश्चर्य करने लगी । उसने किंचित् लज्जायुक्त होकर कहा—महाराज ! मेरा परिचय ही क्या है ? मैं सौदास कोली की कन्या हू । मेरा नाम सत्यवती है । मैं अपने पिता का काम-नाव चलाना-भी करती हू ।

राजा—ऐसी सुन्दरी और सुकुमारी होकर भी यह काम कैसे करती हो !

सत्यवती—महाराज, जिस कुल मे जन्म लिया है उसके कार्य से घृणा करना निरा अहंकार है । मैं कोली के कुल मे जन्मी हू । नाव चलाना इस कुल का परम्परा का कर्त्तव्य है । अगर मैंने नाव चलाना न सीखा होता तो मैं पिता को कष्ट देने वाली साबित होती ।

राजा—तुम्हारा विचार उदार और उत्तम है सुन्दरी, मगर नाव चलाने का कठिन कार्य तो पुरुषो के योग्य है । गृहकार्य करना ही कन्याओ के लिए काफी है । तुम इस कठोर कार्य के योग्य नही हो ।

हुआ था । अब उसे जान पडा कि यह कन्या अकेले रूप की ही धनी नही वरन् उत्तम स्वभाव और गुणो की भी धनी है । यह देखकर कन्या के प्रति उसका आकर्षण और बढ गया ।

राजा शक्तिशाली था । सत्ता उसके हाथ में थी । सत्यवती वहा अकेली थी । उसका कोई रक्षक नही था । राजा उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध भी हो चुका था । वह चाहता तो कन्या को उठा कर ले जा सकता था । लेकिन राजा न मालूम किस धर्म से बंधा हुआ था ? उसने सोचा—इस कन्या से कुछ कहना अन्याय है । मैं धर्म की रीति से इसके पिता से विधि-वत् याचना करूंगा और फिर इसके साथ विवाह करूंगा ।

१२ : भीष्म प्रतिज्ञा

राजा शान्तनु नदी के तट से चल दिया । उसने सत्यवती के पिता का नाम-ठाम पूछ लिया था । वह सत्यवती के पिता शिवदास के पास पहुचा । शान्तनु राजा है और दूसरो को दान देता है, फिर भी आज वह याचक बनकर शिवदास के द्वार पर जा खड़ा हुआ है ।

गरीब शिवदास स्वप्न में भी नही सोच सकता था कि किसी दिन शान्तनु जैसा प्रतापी नरेश उसकी झोंपडी के द्वार पर याचक बन कर आ सकता है ! अतएव राजा को आते देख वह दहल गया ! उसने सोचा—आज मेरे द्वार पर राजा क्यो आ रहा है ? मुझसे कौन-सा भयंकर अपराध हुआ है ? वह व्याकुल, सशंक और कांपता हुआ, हाथ जोड़े राजा के समक्ष उपस्थित हुआ और बोला—महाराजा की जय हो ! कहिए, क्या आज्ञा है इस दास को ?"

धन्य है, जिसमे माता-पिता के प्रति अगाध श्रद्धा है। यह निर्भीक है और उदार भी है। बिना कुछ लिए मुझे पार उतारने को तैयार है। मुझे राजा समझ कर भी कुछ मांगती नहीं, वरन् मेरा उपकार करने को उद्यत है।

राजा ने कहा—जिसमे बिना पैसा लिए नाव द्वारा पार उतार देने की उदार भावना है, वह घर मे बैठकर ही क्या ईश्वर का भजन नहीं कर सकता ? उसे नाव चलाने के सकट मे पड़ने की क्या आवश्यकता है ?

सत्यवती—(हसकर) राजन्, आपका प्रश्न विकट है, फिर भी मैं इसका उत्तर देती हू। मैं नदी मे यह नाव चलाती हू, उसी प्रकार आप राष्ट्र की नाव चला रहे हैं। मैं जनता को सुभीता कर देती हूं और आप भी प्रजा को कष्ट से मुक्त करते हैं। क्या आपको घर मे बैठकर भगवान् का भजन करना नही आता ? फिर आप मुझसे यह प्रश्न क्यो करते हैं ? आलस्य में पडे रहकर धर्म का भरोसा करना धर्म का अपमान करना है। जब आप धर्म का अपमान नही करना चाहते तो मुझे ऐसा करने के लिए क्यो कहते हैं ?

सत्यवती के इस कथन ने राजा को निरुत्तर कर दिया। वह कुछ भी न बोल सका। उसने मन में कहा—हे सुभगे, तू मुझे नाव से नदी के पार पहुचाना चाहती है पर मैं तेरी सहायता से ससार की कठिनाइयो को पार करना चाहता हूं। अपने जीवन के इस व्याकुल प्रवाह मे स्थिरता पाने के लिए मैं तेरा आश्रय लेना चाहता हूं।

इतने वार्तालाप से राजा सत्यवती के शील-स्वभाव को परख सका। वह पहले उसकी शारीरिक सुन्दरता पर मुग्ध

महाराज और प्रधानजी मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरी धृष्टता बड़ी है, मगर आपकी उदारता और क्षमाशीलता उससे भी बड़ी है।

वास्तव मे शिवदास का यह कहना मात्र था। उसके हृदय मे कुछ और बात थी। शिवदास के कहने का ढंग ही ऐसा था कि उसके बहाने को समझ लेना कोई बड़ी बात नही थी। राजा समझ गया। उसने प्रधान से कहा—प्रधानजी, शिवदास का यह कथन बहाना है। जो रानी होगी, उसे अपने पिता से मिलने को कौन मना कर सकता है? कुरुवश ऐसा नहीं कि अपने दाता या श्वसुर को भूल जाय, भले ही जमाता जम या दशवा ग्रह माना जाता है परन्तु कुरुवंशी ऐसे नही होते। इसलिए शिवदास से कहो कि असली बात कह दे। वृथा बहाना बनानें से क्या लाभ है?

शिवदास ने विचार किया—राजा मेरे बहाने को समझ गये हैं और वह असली बात जाना चाहते हैं। असली बात को छिपाने से लाभ ही क्या होगा? आखिर तो वह कहनी ही होगी। यह सोचकर उसने कहा—महाराज! वास्तविक बात कह है कि आपके गंगकुमार पुत्र मौजूद हैं। वे ऐसे प्रतापी हैं कि सारा संसार उनकी धाक मान रहा है। वही राज्य के उत्तराधिकारी हैं। प्रथम तो आपके बडे पुत्र होने के कारण ही वह राज्य के उत्तराधिकारी हैं, दूसरे प्रतापशाली होने के कारण भी। ऐसी स्थिति मे मेरी कन्या का पुत्र राज्य का अधिकारी नही हो सकेगा और पुत्र के राज्याधिकारो न होने के कारण मेरी लडकी सदा दु.खित रहेगी। आपके यहां जब ऐसे प्रतापी पुत्र मौजूद हैं तो आपको दूसरा

राजा ने शिवदास की व्याकुलता समझ ली। उसे आश्वासन देते हुए कहा—घबराओ मत, शिवदास। तुमने कोई अपराध नही किया है। मैं याचक बनकर तुम्हें दाता बनाने आया हूं।

शिवदास का भय दूर हो गया, लेकिन वह आश्चर्य में डूब गया। वह कहने लगा—"पृथ्वीनाथ ! मेरे पास ऐसी क्या वस्तु है, जिसकी याचना आप कर सकते हैं ? अगर कोई ऐसी वस्तु होती भी तो आपका हुक्म ही काफी था। मैं हुक्म पाते ही सेवा में हाजिर हो जाता।"

शान्तनु—शिवदास वह वस्तु आज्ञा देकर मंगवाने की नही है, किन्तु याचक बनकर मांगने की है।

राजा, जब नदी-तट से रवाना हुआ तभी उसका प्रधान भी साथ हो लिया था। उसे राजा ने अपनी इच्छा से परिचित कर दिया था। इस समय भी वह राजा के साथ था। उसने कहा—तुम्हारी कन्या सत्यवती का भाग्य उदय हुआ है शिवदास ! महाराज ने उस कन्या को देखा है। उसी की याचना करने के लिए महाराज यहां पधारे हैं। अब विलम्ब मत करो। जल्दी "हां" कर दो। ऐसा पात्र तुम्हे दूसरा नही मिलने का !

शिवदास—निःसन्देह मैं भाग्यशाली हूं, मगर यह कैसे भूल सकता हूं कि मैं गरीब कोली हू और महाराज प्रख्यात प्रतापी नरेश हैं। मैं महाराज को जामाता बनाने की हैसियत मे नही हूं। कन्या को बड़े ठिकाने भेज देने पर तो उसका देखना भी मेरे लिए कठिन हो जायगा। इसलिए

होकर भी वह भिखारी बना लेकिन कितने परिताप की बात है कि उसे भिक्षा न मिली ! वह पश्चात्ताप की आग में जल रहा था । उसे राज्य वैभव, राजमहल, खान–पान और अपना शरीर भी दुःखदायी प्रतीत होने लगा । जब मनुष्य प्रबल आकांक्षा करके किसी वस्तु की याचना करता है और पाता नही है तब उसका दुःख "मरणादतिरिच्यते" अर्थात् मृत्युकष्ट से भी बढ़ जाता है। राजा के विषाद की कोई सीमा नही थी । आवेश मे आकर वह अपने आपको धिक्कारने लगा । कहने लगा—हे इन्द्रियो ! क्या तुमने मुझे नहीं छला ? हे नाक, तू ऊंची होने गई थी या नीची होने गई थी ? अगर तूने योजनगंधा—सत्यवती–की गंध ग्रहण न की होती और ग्रहण करके भी उस पर मुग्ध न हुई होती तो क्या इस प्रकार अपमानित होना पड़ता ? गंध को खोजने के लिए तूने ही इन आंखो को उत्सुक बनाया था ! अरे नेत्रो ! तुम कैसे निर्लज्ज हो कि उसके रूप पर जाकर अटक गए ? हृदय ! तूने मुझे कितनी बार छला है ? वास्तव में तू ही मेरा वैरी है। तेरे षडयन्त्र के बिना ये बेचारी इन्द्रियां क्या कर सकती थी ? इन्द्रियां अपने-अपने विषय को ग्रहण करती हैं, मगर विषयो मे मोह उत्पन्न करने का कारण तू ही है। असल मे शिवदास ने मेरा अपमान नहीं किया, अपमान तुम सब ने मिलकर किया है । तुमने आगे पीछे का विचार नही किया । ठौर-कुठौर का विचार त्याग दिया । यह भी न सोचा कि इसका परिणाम अच्छा होगा या बुरा होगा ?

शान्तनु ने नाक के फेर मे पड़कर आंखो को सत्यवती के देखने मे लगा दिया था । रावण ने कानो के चक्कर में पड़कर–कानो से सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर–अपने

विवाह करने की आवश्यकता भी क्या है ? मैं इसी कारण आप सरीखे सुयोग्यपात्र का सत्कार करने मे असमर्थता अनुभव कर रहा हूं ।

राजा ने सोचा था—गरीब शिवदास कुछ शुल्क लेना चाहता है । अब उसकी बात सुनी तो चक्कर में पड़ गया। अगर मैं सत्यवती के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की प्रतिज्ञा करता हू तो गंगकुमार का हक मारा जाता है। ऐसा नही करता तो सत्यवती हाथ से जाती है ! शिवदास अपनी कन्या के उज्ज्वल भविष्य की यदि कामना रखता है तो उसे अनुचित भी कैसे कहा जा सकता है ? यद्यपि सत्यवती ने मेरा मन हरण कर लिया है और वह मेरी नाव पार लगाने वाली है, फिर भी गंगकुमार के न्यायसंगत अधिकार का अपहरण नही किया जा सकता । जब शिवदास कोली होते हुए भी अपनी सन्तान के हिताहित का इतना अधिक विचार रखता है तो मैं कुरुवंशी राजा-न्यायाधीश होकर भी क्या अपनी सन्तान के हित का विचार त्याग दू? क्या मैं अपने सुख के लिए गंगकुमार जैसे सुयोग्य, विनीत और समर्थ पुत्र को उसके अधिकार से वञ्चित कर दूं ? नही, ऐसा नही होगा ।

राजा अनमने भाव से हस्तिनापुर की ओर लौट चला । शिवदास अपनी झोंपडी मे जा बैठा । शिवदास के मन मे तनिक भी पश्चात्ताप नही है । उसका खयाल है कि उसने जो कुछ कहा है, वह एकान्त उचित और न्यायसंगत है ।

राजा अपने महल मे आकर भी अत्यन्त खिन्न है। वह एक दरिद्र कोली के घर से निराश होकर लौटा है । राजा

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितम्
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलम् ।
रागद्वेषभयामयान्तकजरालत्वलोभादयो,
नालं यत्पदलघनाय स महादेवो मया वन्द्यते ।।

अर्थात्—जो तीन काल सम्बन्धी, तीनो लोको को, हथेली की रेखाओ के समान प्रत्यक्ष देखते हैं अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, तथा जिन्होने राग, द्वेष, भय, रोग, मृत्यु, जरा, लोभ आदि समस्त दोषों को जीत लिया है अर्थात् वीतराग हैं, उन महादेव को मैं वन्दना करता हूं ।

अकलक देव ने इसी प्रकार के ब्रह्मा और विष्णु आदि को भी नमस्कार किया है। भर्तृहरि ने अपने पद्य मे जहा काम की निन्दा की है, वही उसकी प्रबल शक्ति का दिग्दर्शन भी कराया है, क्योकि वे स्वय भी उससे धोखा खा चुके थे ।

शान्तनु हृदय की व्यथा को हल्का करने के लिए अपनी इन्द्रियो की निन्दा करने लगा, लेकिन उसका मन काबू में नही आया । शान्तनु उसे शांत करने का ज्यों-ज्यो प्रयत्न करता था, मन त्यो-त्यो उचटकर सत्यवती के पास जा पहुचता था । कभी सत्यवती की सरलता, कभी सुन्दरता, कभी बुद्धि की चतुरता और कभी उसकी वाक्पटुता का वह विचार करने लगता था ।

इस प्रकार राजा का चित्त घोर अशांति का अनुभव करने लगा । नाना प्रकार के संकल्प विकल्प उसके चित्त में समुद्र में लहरो की भांति उत्पन्न होते और विलीन होते थे । उसके मन मे कभी गगकुमार का विचार आता और कभी

और अपने परिवार का सर्वनाश किया था।

राजा कहता है—अरे कानो ! तुम भी नाक और आंख सरीखे बन गये। तुमने उस सुन्दरी की बात सुनी ही क्यों ? और हे जीभ ! तू उससे सभाषण न करती तो तेरा क्या बिगड़ता था ?

शृङ्गारशतक में कहा है—

शम्भुस्वयम्भूहरयो हरिणेक्षिताना,
येनाऽक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ॥
वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय,
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥१॥

कामदेव के सामने भर्तृहरि ने भी घुटने टेक दिये। वे कहते हैं—हे काम ! या तो ईश्वर ऐसा है कि जिसका वाणी द्वारा वर्णन नही किया जा सकता या तू ऐसा है। तेरा वर्णन तो दूर रहा, एक स्त्री के चरित्र का वर्णन भी कठिन है। तूने मुझे ही नही छला बल्कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव से भी मृगाक्षी स्त्रियो के लिए पानी भरवाया है ! तेरा चरित्र कहने मे वाणी असमर्थ है।

ब्रह्मपुराण, शिवपुराण और विष्णुपुराण से प्रकट है कि ब्रह्मा को सावित्री के लिए अपना सिर कटवाना पड़ा, शकर को पार्वती के लिए नाचना और भागना पडा और विष्णु को तो गोपिकाओ ने नचाया था। यह चरित्र विकारी हैं। हम जिनका वर्णन किया करते हैं वे निर्विकार चरित्र वाले ब्रह्मा आदि दूसरे ही हैं। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री अकलकदेव कहते हैं—

स्वीकार कर लेगा और राज्याधिकार त्याग देगा, लेकिन ऐसा करना क्या पिता का कर्त्तव्य है ?

कभी-कभी राजा सोचने लगता—"यद्यपि शिवदास का शरीर काला और वेडौल है, परन्तु जव मेरे सामने खडा हुआ और मैंने उसके हृदय की पहिचान की, तब वह ऐसा सुन्दर प्रतीत हुआ जैसे उसके समान सुन्दर और कोई है ही नहीं ! पहले मैं सोचता था कि ऐसे कोली के यहां ऐसी सुन्दरी का जन्म कैसे हुआ ? परन्तु देखता हू कि उसका हृदय जितना स्वच्छ है, उतना किसी राजा-महाराजा का भी शायद ही हो । मैं उसकी कन्या की याचना करके उसका जामाता बनना चाहता था । उसे अपना श्वसुर बनाना चाहता था । राजा का श्वसुर बन जाने पर उसे किस चीज की कमी रह सकती थी ? उसका भाग्य खुल जाता । मगर उसने ऐसा विचार नही किया । उसने नही सोचा कि नाव चलाने को किल्लत हमेशा के लिए मिट जाएगी और पालकी वैठने को मिलेगी । उसे ऐसा लोभ नही हुआ । यह लोभ किसे नही हो सकता था ? मगर शिवदास ने आती हुई लक्ष्मी को उसी प्रकार ठुकरा दिया, जैसे वन का तपस्वी राज्य को ठुकरा देता है ।"

मित्रो ! सत्यवती वास्तव मे शिवदास की नही, दूसरे की कन्या है । शिवदास यह बात भली-भांति जानता है । बहुत-से लोग लोभ के फेर मे पड़कर अपनी ही कन्या की भलाई का विचार नहीं करते तो पराई कन्या का कब भला सोचेंगे ? मगर एक यह शिवदास है जो अपनी भलाई की परवाह न करके कन्या की भलाई ही सोचता है । वह सोचता है कि सत्यवती राजकन्या है, फिर भी इसका पुत्र

सत्यवती का चित्र खिच जाता। वह सोचने लगता—दोनो में से किसको अपनाऊं। कभी उसके मन में आता कि दरिद्र शिवदास की इतनी मजाल! उसे मेरा अपमान करने का साहस हुआ! ससार जानता है कि रत्नो का स्वामी राजा होता है। सत्यवती रमणीरत्न है और उसका असली स्वामी मैं हूं। क्यों न मैं उसे पकडा मगाऊं?

इसके बाद ही विचार परिवर्त्तित हो जाता। वह सोचने लगता—क्या एक रमणी के खातिर पूर्वजों-द्वारा रक्षित धर्म को ठुकरा देना उचित होगा? कौरववश के नर-रत्न जिस मर्यादा का प्राणपण से पालन करते आये हैं, क्या तुच्छ स्वार्थ में फंसकर उस पवित्र मर्यादा को भंग करना मेरे लिए उचित होगा? नही, शान्तनु कौरव-कुल को कलकित नही कर सकता। कौरव कुल की कीर्ति मे धब्बा लगाना शान्तनु सहन नही कर सकता।

इस प्रकार के संकल्प-विकल्प करते-करते दिन पर दिन बीतते गये। राजा की उलझन बढती गई। मन पर वह विक्षय न पा सका। गगकुमार और सत्यवती मे से वह किसी का मोह न त्याग सका। सतत चिन्ता के कारण राजा पीला पड़ गया। बुढापा न होने पर भी उसके चेहरे पर बुढ़ापे के लक्षण दिखाई देने लगे। वह इसी सोच–विचार मे रहता कि यदि वह अनिद्य सुन्दरी और गुणवती तरुणी महल मे आकर न बसी तो मेरा जीवन ही निष्फल हो गया। लेकिन अपने सुख के लिए विनीत, नीतिमान्, बलवान् और पितृभक्त पुत्र गगकुमार के अधिकार का अपहरण कैसे किया जा सकता है? शिवदास का प्रस्ताव गगकुमार के सामने रखा जाय तो वह उसे प्रसन्नतापूर्वक

शान्तनु कठोर दुविधा में पडा हुआ दुबला होता जा रहा है। भले ही और मार्ग उसके अधिकार में नहीं थे, लेकिन एक ऐसा मार्ग अवश्य था, जिस पर चलने से वह सारी दुविधाओं से बच सकता था। अगर शान्तनु अपनी काम-वासना को जीत लेता और ब्रह्मचर्य धारण कर लेता तो उसे बड़ी शाति मिलती। वह सोच सकता था कि गंगा स्त्री होकर भी जब ब्रह्मचर्य का पालन कर रही है और उसने प्राप्त भोगोपभोगों को भी ठुकरा दिया है, तो मैं भी ब्रह्मचर्य क्यो न पालू ? इस विचार को अमल में लाने से उसकी व्याकुलता मिट जाती और उसे जीवन में अपूर्व शांति प्राप्त होती। जैसे गंगकुमार महापुरुष, उत्तम पुरुष और वृद्ध-पुरुष माने जाते हैं, उसी प्रकार शान्तनु भी माना जाता। मगर वह ऐसा न कर सका। वह अपनी काम-वासना को जीतने मे असफल रहा। फिर भी वह इस अंश मे प्रशंसनीय है कि सत्यवती को बहुत अधिक चाहने पर भी एवं उसके विरह मे घोर मानसिक वेदना सहन करके भी उसने मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। लोग चाह के वश में होकर ही मर्यादा तोड डालते हैं, जैसे पाटन के प्रभु सिद्धराज ने जसमा के लिए मर्यादा भङ्ग कर दी थी।*वैसे राजा शान्तनु ने मर्यादा भङ्ग नही की। गीता मे कहा है—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति नि स्पृह॰।
निर्ममो निरहंकारः स शातिमधिगच्छति ७१। अ०२

अर्थात् जो सब प्रकार की काम-वासना को त्यागकर निस्पृह बन जाता है और ममता एवं अहंकार से रहित होकर

---

*जसमा की कथा के लिए देखो—जवाहरकिरणावली, चौथी किरण।

अगर राजा न हुआ तो सत्यवती दुःखी होगी । कन्या को कष्ट पहुंचाने वाला कार्य मैं कदापि नहीं करूंगा ।

शिवदास का चरित उन लोगों की आंखें खोल देने के लिए काफी है जो स्वार्थ के वश होकर अपनी ही कन्या को बेच देते हैं और यह नही देखते कि वर बूढ़ा या रोगी है या मृत्यु के नजदीक पहुच रहा है ।

राजा शान्तनु की अवस्था बडी विचित्र है । वह तीन तरह के विचारों में पडा व्याकुल हो रहा है । एक ओर सत्यवती का आकर्षण है, दूसरी ओर गंगकुमार का न्यायसंगत अधिकार है । कभी-कभी वह सत्यवती को पकड मंगवाने का भी विचार करता है, मगर दूसरे ही क्षण उसे अपने धर्म का स्मरण हो आता है ।

आज तो समर्थ को दोषी ही नही माना जाता । कहा जाता है—

समरथ को नही दोष गुसाईं ।

बडो के बडप्पन को सौ गुनाह माफ समझे जाते हैं । परन्तु मैं कहता हूं कि संसार मे अधिक दोष बडे कहलाने वालो ने ही फैलाये हैं । जनता बड़ों को आदर्श मानकर उनका अनुकरण करती है और फिर बड़ों के दोष छोटों मे भी घुस जाते हैं । कहावत भी है—

महाजनो येन गतः स पन्थाः ।

इस कहावत के अनुसार साधारण जनता बड़ो के दोषों को भी आदर्श मानकर अपना लेती है और संसार मे पाप फैल जाता है ।

किया है, जिसके साथ अग्नि, मन्त्र, देव, देवी आदि की साक्षी से विवाह किया है और पत्नीव्रती रहने की प्रतिज्ञा की है, उसे धोखा मत दो । कम से कम परस्त्रीगमन का त्याग अवश्य करो । अतीत मे जो कुछ हुआ सो हुआ, अब आगे के लिए सम्भलोगे तो परम कल्याण होगा ।

शान्तनु ने राज्य का समस्त भार गगकुमार के कंधो पर डाल दिया था । वह उस ओर से सर्वथा निश्चिन्त था । गग-कुमार के शासन से प्रजा भी सन्तुष्ट और सुखी थी । गंग–कुमार को कोई सत्यवादी, कोई धर्मात्मा और कोई पुण्यशाली कहता था और यह कथन गगकुमार की चापलूसी करने के लिए उसके सामने नही वरन् परोक्ष मे भी किया जाता था । प्रजा वास्तव मे ऐसा ही अनुभव करती थी । गंगकुमार का उदार व्यवहार और धर्मनिष्ठ जीवन ही ऐसा था कि उसकी प्रशसा हुए विना नही रह सकती थी । गंगकुमार ने अपने प्रेम से शत्रुओ का हृदय भी जीत लिया था । उसकी कीर्ति दिन–दिन बढती जाती थी और अन्य राजा लोग कीर्ति सुन-कर प्रमोद प्रकट करते थे । गगकुमार के प्रति किसी को ईर्ष्या या द्वेष नहीं था ।

१३ : भीष्म की प्रतिज्ञा

एक दिन गगकुमार जब पिता की चरण-वन्दना के लिए गये तो पिता की दुरवस्था देखकर उन्हे बड़ा आश्चर्य हुआ और चिन्ता भी हुई । वह मन ही मन सोचने लगे—पिताजी के हृदय मे क्या काटा चुभा है, जिससे यह इस प्रकार विषण्ण और दुर्बल होते जाते हैं । जिस पुत्र के मौजूद रहते पिता

विचरता है, वही शांति पाता है।

यद्यपि उत्तम पुरुष कामभोग का त्याग करता है, परन्तु इतनी शक्ति न होने पर क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में कहा है—

आपूर्णमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशति यद्वत् ।
तद्वत्कामायं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी७१

अर्थात् समुद्र नदियो को निमंत्रण देकर बुलाता नही है। फिर भी समस्त नदिया उसी में जाकर मिलती हैं। इसका कारण यह है कि समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नही करता। संसार की सभी नदियां समुद्र में ही जाकर मिलती हैं मगर कभी कोई समुद्र चार अंगुल भी नहीं बढता। जो पुरुष समुद्र की भांति मर्यादा की रक्षा करते हैं और निष्काम रहते हैं, उन्हें शांति भी मिलती है और उनके पास ऋद्धि दौड-दौड कर आती है। इससे विपरीत, जो धन के लिए, स्त्री के लिए या कीर्ति के लिए हाय-हाय करता रहता है और कामों की ही कामना करता है, उसे कभी शांति नही मिलती। आचारांगसूत्र मे भी कहा है—

कामकामी खलु अयं पुरिसे से सोयति झूरति तिप्पति कूरेंति।

अर्थात्—काम की कामना करने वाला पुरुष सदैव दुःखी रहता है, व्याकुल रहता है और अशांत बना रहता है।

राजा शान्तनु काम को जीत तो न सका मगर कामान्ध होकर उसने मर्यादा का त्याग भी नही किया। आप भी अगर पूरी तरह ब्रह्मचर्य नही पाल सकते तो कम से कम गृहस्थ-धर्म की मर्यादा की तो रक्षा करो। जिस स्त्री का पाणिग्रहण

इस योग्य समझते हो तो कोई पर्दा न रखिए और कृपा कर अपनी चिन्ता का कारण बतलाइए। हा, अगर आपकी चिन्ता का निवारण करना मानवीय शक्ति से परे हो तो मैं इतना ही कहूगा कि ऐसी बात के लिए चिन्ता करना ही व्यर्थ है।

शान्तनु—बेटा, मुझे तेरी ही चिन्ता है। तू मेरा एक ही पुत्र है। तुझे कौरव वश का सूर्य कहू या चन्द्र कहू, जो कुछ है तू ही है। तुझे भी युद्ध करने के लिए शत्रुओ के बीच जाना पड़ता है। मैं सोचता हू, कौन जाने कब क्या घटना घट जाए ? मैं तेरा कल्याण चाहता हू।

पिता की बात सुनकर गगकुमार ने मुस्करा कर कहा—पिताजी, मुझ पर आपका असीम स्नेह है, इसीलिए आप अपनी चिन्ता का असली कारण बतलाकर मुझे दुःखी नही करना चाहते। आपका पुत्र ऐसा नही है, जिसके लिए आपको चिन्तित होना पडे। यह बात आप स्वय जानते भी है। चिन्ता का कारण कुछ और ही है, जिसे आप प्रकट नही करते। कृपा कर मुझे वास्तविक कारण से परिचित कीजिए।

शान्तनु सोचने लगे—समझा था कि ऐसा कहने से गगकुमार प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जायगा। मगर न वह प्रसन्न हुआ, न सन्तुष्ट ही।

यह सोचकर शान्तनु बोले—वत्स, मेरी एक चिन्ता यह भी है कि तुम्हारी माता ने तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया मगर मैं न कर सका। तुम्हारी माता प्रतिज्ञा का पालन करके भी तप कर रही है और मैं प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होकर भी राजमहल के सुख भोग रहा हू।

को कष्ट हो, उस पुत्र को धिक्कार है ।

गंगकुमार ने राजा शान्तनु से पूछा–पिताजी,यह मैं समझ सकता हूं कि आपके कष्ट का कारण मैं ही हू। मेरे निमित्त से ही आपका शरीर सूखकर कांटा हो गया है। लेकिन आपकी यह दशा अब असह्य है। अतएव अगर मेरा भला चाहते हो तो कृपाकर स्पष्ट बतलाइए कि आपकी मनोव्यथा का कारण क्या है ? किस कारण आपकी यह दशा हो गई है ? अगर कारण बतलाने मे सकोच न हो और वह कारण जानने के लिए मैं अयोग्य न होऊं तो मुझे बतलाइए । मैं अपने प्राण देकर भी आपको सुखी रखने की चेष्टा करूंगा ।

गगकुमार की भावनामय विनम्र प्रार्थना सुनकर शांतनु का हृदय गद्गद् हो गया । वह मन मे कहने लगा—क्या ऐसे सुशील बालक का अधिकार दूसरे को लुटाया जा सकता है ? अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसका भविष्य अन्धकारमय कैसे बनाया जा सकता है ? एक विचित्र दुविधा की स्थिति मे शान्तनु की आखो से आसू निकल पडे । बोली न निकली ।

पिता की यह स्थिति देख गंगकुमार ने कहा—पिताजी, मैंने आपसे जो कारण पूछा है, सो इसलिए नही कि आपका दुःख और बढाऊ ।

शान्तनु ने गगकुमार को गले से लगा लिया और प्रेम से सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—पुत्र, चिन्ता करने योग्य कोई वात नही है ।

गगकुमार—आप सरीखे महापुरुष अकारण ही इतने दुःखी और दुर्बल नही हो सकते । अतएव अगर आप मुझे

आपको इतना ज्यादा दु'खी कर दिया है, इसका कोई तात्कालिक कारण तो होना ही चाहिए ।

शान्तनु इससे आगे कुछ न कह सके । पेट की बात जीभ पर लाने मे उन्हे घोर लज्जा प्रतीत होती थी। लज्जा और सकोच ने मिलकर उनका मुंह बन्द कर दिया ।

शान्तनु की बात से गगकुमार को कुछ-कुछ असली बात का आभास मिल गया था । उसने बिना कहे ही पिता का हृदय पहिचान लिया था । वह समझ गया था कि पिता के हाड–पिंजर निकल आने और आखें बैठ जाने का कारण मैं ही हूं ।

गगकुमार अपने जीवित पिता का श्राद्ध करने के लिए तत्पर हो गया । अन्य लोग तो मृत पिता का श्राद्ध करते हैं मगर गगकुमार ने जीवित पिता का ही श्राद्ध करना निश्चित कर लिया । श्राद्ध का अर्थ है – "जो श्रद्धापूर्वक किया जाय ।" "श्रद्धया दीयते–इति श्राद्ध. ।" तात्पर्य यह है कि श्रद्धापूर्वक जो त्याग किया जाता है, किसी के बहकाने या फुसलाने मे आकर नही, परम्परा का पालन करने के लिए भी नही, वरन् हृदय की श्रद्धा से जो त्याग किया जाता है, वह श्राद्ध है । गंगकुमार ऐसा ही श्राद्ध करने के लिए तैयार हो गया ।

गगकुमार ने अपने मन्त्रियो को बुला कर कहा—आज मैं सकट मे हू और सकट टालने के लिए ही आपको बुलाया है ।

मन्त्री भौचक से रह गए । वे कहने लगे—आप जैसे

को कष्ट हो, उस पुत्र को धिक्कार है ।

गंगकुमार ने राजा शान्तनु से पूछा–पिताजी, यह मैं समझ सकता हूं कि आपके कष्ट का कारण मैं ही हूं। मेरे निमित्त से ही आपका शरीर सूखकर काटा हो गया है । लेकिन आपकी यह दशा अब असह्य है । अतएव अगर मेरा भला चाहते हो तो कृपाकर स्पष्ट बतलाइए कि आपकी मनोव्यथा का कारण क्या है ? किस कारण आपकी यह दशा हो गई है ? अगर कारण बतलाने मे संकोच न हो और वह कारण जानने के लिए मैं अयोग्य न होऊं तो मुझे बतलाइए । मैं अपने प्राण देकर भी आपको सुखी रखने की चेष्टा करूंगा ।

गगकुमार की भावनामय विनम्र प्रार्थना सुनकर शातनु का हृदय गद्‌गद् हो गया । वह मन मे कहने लगा—क्या ऐसे सुशील बालक का अधिकार दूसरे को लुटाया जा सकता है ? अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसका भविष्य अन्धकारमय कैसे बनाया जा सकता है ? एक विचित्र दुविधा की स्थिति मे शान्तनु की आखो से आंसू निकल पड़े । बोली न निकली ।

पिता की यह स्थिति देख गंगकुमार ने कहा—पिताजी, मैंने आपसे जो कारण पूछा है, सो इसलिए नही कि आपका दुःख और बढाऊं ।

शान्तनु ने गगकुमार को गले से लगा लिया और प्रेम से सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—पुत्र, चिन्ता करने योग्य कोई बात नही है ।

गगकुमार—आप सरीखे महापुरुष अकारण ही इतने दुःखी और दुर्बल नही हो सकते । अतएव अगर आप मुझे

चिन्ता में घुले जा रहे हैं। एक धीवर के कहने से किसी का राज्य किसी को नहीं दिया जा सकता और न ऐसी बातो से राज्य ही चलता है। सीधी तरह न मानने वालो की पूरी तरह खबर लेने से ही राज्य चल सकता है।

ऐसे समय गगकुमार का क्या कर्त्तव्य था ? अगर वह मस्तिष्क की सलाह मानता तो मस्तिष्क उसे वही सलाह देता जो मत्रियों ने दी थी। मगर हृदय की बात दूसरी है। गंगकुमार हृदयेश्वर है। उसने प्रधानो से कहा—अब मैं समझ गया कि पिताजी राजा क्यो हुए और आप प्रधान ही क्यो रह गये ? आपको प्रजा के कष्ट की पीडा नहीं है। पिताजी धन्य हैं जो अपनी चाह मे नमक की डली की तरह घुलते रहे, पर जिन्होने धर्म नही त्यागा। अर्थात् धीवर की कन्या को जबर्दस्ती नही लाये। वह धीवर भी सचमुच धी-वर (बुद्धिमान्) है, जिसने अपने स्वार्थ की परवाह न करके अपनी कन्या का ही हित सोचा। पिताजी के हृदय में पाप नही है। उनका हृदय अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र है। इसी कारण वे मेरे अधिकार की भी रक्षा कर रहे हैं और यह भी विचार कर रहे हैं कि किसी की कन्या को बलात् छीनना न्यायसगत नही है। कन्या को पिता की गोद से छीनना ईश्वर से छीनना है। वास्तव मे पिताजी का विचार बहुत पवित्र है। कोली निर्धन और निर्बल है तो क्या हुआ, वह अपने धर्म का पालन कर रहा है। धर्म पालने वाले को राज्यसत्ता के कारण दड देना सत्ता का दुरुपयोग करना है। पिताजी राजधर्म का पालन करने के कारण ही उस कन्या को जबर्दस्ती नही ला रहे हैं और मेरे अधिकार का विचार करके ही कोली को विश्वास नही दे रहे हैं कि उसकी

इतना कहकर शान्तनु ने पिछला सम्पूर्ण वृत्तान्त गग-कुमार से कह सुनाया। किस प्रकार वह शिकार के लिए वन में गया, किस प्रकार गगा से भेंट हुई, किस प्रकार प्रतिज्ञा की और तोड़ी और आखिर गंगा उसे छोड कर चल दी इत्यादि समस्त घटनाएं शान्तनु ने गंगकुमार के सामने उपस्थित कर दी।

तत्पश्चात खेदखिन्न होकर वह कहने लगा—मुझे बार-बार यही विचार आता है कि आज तुम्हारी माता यहा होती तो तुम अकेले क्यो होते? तुम सरीखा तुम्हारा और भाई होता। उस अवस्था में मुझे काहे की चिन्ता थी? एक पुत्र भी कोई पुत्र है! एक आख भी कोई आंख है।

गगकुमार पिछला सारा वृत्तात सुन कर अत्यन्त गभीर हो गया था। उसे अपनी माता का अपूर्व स्नेह याद आ गया। माता की दृढता और धार्मिकता की कथा सुनकर उसकी छाती फूल उठी। वह गौरव अनुभव करने लगा। लेकिन तपोमय जीवन का स्मरण करके उसके हृदय में कैसी भावना उत्पन्न हुई, यह कहना कठिन है। उसे कुछ ऐसा हुआ, जिसे विषादमय सन्तोष कहा जा सकता है।

गगकुमार बोला—पिताजी, चिन्ता की क्या बात है? माताजी तप कर रही हैं, यह तो प्रसन्नता की बात है। आपने अपनी ओर से उनका परित्याग नही किया है, यह सोचकर आप भी सन्तोष कर सकते हैं। माताजी की तपस्या की शक्ति से मैं, आप और यह कुल शक्तिशाली हैं। कदाचित् आपकी चिन्ता का यही कारण हो तो प्रश्न होता है कि इससे पहले आपको यह चिन्ता क्यो नही हुई थी? माताजी की स्मृति ने

चिन्ता में घुले जा रहे हैं । एक धीवर के कहने से किसी का राज्य किसी को नही दिया जा सकता और न ऐसी बातो से राज्य ही चलता है । सीधी तरह न मानने वालो की पूरी तरह खबर लेने से ही राज्य चल सकता है ।

ऐसे समय गंगकुमार का क्या कर्त्तव्य था ? अगर वह मस्तिष्क की सलाह मानता तो मस्तिष्क उसे वही सलाह देता जो मन्त्रियो ने दी थी । मगर हृदय की बात दूसरी है । गंगकुमार हृदयेश्वर है । उसने प्रधानों से कहा—अब मैं समझ गया कि पिताजी राजा क्यो हुए और आप प्रधान ही क्यो रह गये ? आपको प्रजा के कष्ट की पीडा नहीं है । पिताजी धन्य हैं जो अपनी चाह मे नमक की डली की तरह घुलते रहे, पर जिन्होने धर्म नही त्यागा । अर्थात् धीवर की कन्या को जबर्दस्ती नही लाये । वह धीवर भी सचमुच धी-वर (बुद्धिमान्) है, जिसने अपने स्वार्थ की परवाह न करके अपनी कन्या का ही हित सोचा । पिताजी के हृदय में पाप नही है । उनका हृदय अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र है । इसी कारण वे मेरे अधिकार की भी रक्षा कर रहे हैं और यह भी विचार कर रहे हैं कि किसी की कन्या को बलात् छीनना न्यायसगत नही है । कन्या को पिता की गोद से छीनना ईश्वर से छीनना है । वास्तव मे पिताजी का विचार बहुत पवित्र है । कोली निर्धन और निर्बल है तो क्या हुआ, वह अपने धर्म का पालन कर रहा है । धर्म पालने वाले को राज्यसत्ता के कारण दड देना सत्ता का दुरुपयोग करना है । पिताजी राजधर्म का पालन करने के कारण ही उस कन्या को जबर्दस्ती नही ला रहे हैं और मेरे अधिकार का विचार करके ही कोली को विश्वास नही दे रहे हैं कि उसकी

बलवान्, नीतिज्ञ और प्रजा के प्रिय राजकुमार पर क्या संकट आ सकता है ?

गंगकुमार—अब मैं प्रशंसा के योग्य नहीं हूं। जिस पुत्र के रहते पिता दु.खी हों, वह पुत्र प्रशंसा का पात्र नहीं कहा जा सकता। मंत्रीगण, जब तक पिताजी सुखी न हों, मेरा जीवन वृथा है। आज मैंने पिताजी से उनके दुःख का कारण पूछा था। उन्होंने कुछ कारण बतलाए भी हैं, मगर उनसे मेरा सन्तोष नही हुआ। अगर आप में से कोई उनके दुःख का वास्तविक कारण जानता हो तो बतलाइए।

गंगकुमार की चिन्तायुक्त बात सुनकर मंत्रीगण हंसकर कहने लगे—महाराज को किसी बड़ी बात का दुःख नहीं है। बात वास्तव में जरा-सी है। महाराज एक धीवर की कन्या पर मोहित हुए हैं और जब से मोहित हुए हैं, तभी से चिंतित रहते हैं। चिन्ता का कारण यह है कि धीवर अपनी कन्या से उत्पन्न पुत्र को ही राज्याधिकारी बनाने की मांग कर रहा है और महाराज आपका अधिकार छीनना नही चाहते। यही चिंता का वास्तविक कारण है।

गंगकुमार—महाराज को जिस बात की चिन्ता है वह आपकी दृष्टि में क्या छोटी है ?

प्रधान—छोटी नही तो और क्या बडी है ? एक धीवर की छोकरी के लिए इतनी चिन्ता करने की आवश्यकता क्या है ? राजा रत्नभोगी होते हैं। अतएव धीवर की लडकी के लिए किसी से पूछताछ करने की जरूरत नही। उसे पकड़ कर बुलवा लेना चाहिए। महाराज को यह सम्मति दी गई थी। मगर उन्होंने हमारी बात नही मानी और चिन्ता ही

समर्पण कर दिया जाय तो क्या बड़ी विशेषता है ? तुम मेरा आशय समझ गये होगे। अब जो कुछ कहना हो स्पष्ट कहो।

गगकुमार की बात ध्यानपूर्वक सुनने के अनन्तर शिवदास सोचने लगा—इन जैसे पितृभक्त वीर पुत्र को धन्य है। परन्तु जो ऐसा वीर है वह मेरी पुत्री के पुत्र को राज्य कैसे करने देगा ? देखना चाहिए कि इनकी पितृभक्ति मौखिक है या इनमे पिता के लिए सचमुच ही त्याग करने की तत्परता है ? यह सोचकर शिवदास कहने लगा—आपकी पितृभक्ति और पिता के निमित्त त्यागवृत्ति सर्वथा सराहनीय है। आपका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हुआ। आपके पिता की इच्छित वस्तु देने मे मेरी ओर से तनिक भी देर नही है। अगर देर है तो सिर्फ आपकी ओर से। आपके पिताजी को आपका जो खयाल है, वह अनुचित नही कहा जा सकता। उन्हे यह भी विचार हो सकता है कि कदाचित् वे दूसरे को राज्य देना स्वीकार भी कर लें तो गगकुमार उसे लेने भी कैसे देंगे ? और आप सरीखे वीर योद्धा के सामने किसी की क्या चल सकती है ? ऐसी स्थिति में मेरी लड़की को दुःख के सिवाय और क्या हो सकता है ? इससे अच्छा यही है कि मैं उसका विवाह किसी छोटे घर मे ही कर दूं। हा, अगर आप पिता का दु.ख दूर करना चाहते हैं तो एक उपाय है। आप प्रतिज्ञा करें कि—"मैं राज्य नही लूंगा और सत्यवती का पुत्र ही राजा होगा और मैं उसकी रक्षा करूंगा।" ऐसी प्रतिज्ञा आप कर सकें तो महाराज का दु.ख मिट सकता है।

शिवदास, गगकुमार से अपने अधिकार का राज्य त्याग

प्रकार का भय मत करो । मैं तुम्हे डराने-धमकाने नही आया हूं ।

भय असत्य का प्रधान कारण है । जहां भय है वहा असत्य आ ही जाता है । सच्ची बात वही कह सकता है, जिस पर किसी प्रकार का दबाव न हो और जो निर्भय हो । सत्य तो सत्य और प्रेम से ही प्रकाश में आता है ।

गगकुमार ने शिवदास से कहा—अब मैं अपने आने का कारण बतलाता हू । पिता तुम्हारे द्वार से अपमानित होकर लौटे । इस अपमान के कारण उन्होने अपना शरीर ही सुखा डाला है मगर उनके दु ख का कारण मैं हू, तुम नही हो । मैं न जनमा होता तो न तो तुम्ही पिता को खाली लौटाते और न उन्हे ही वचन देने मे सकोच होता । इस प्रकार वह दु.ख से बच सकते थे । मगर मेरे कारण सब बात बिगड़ गई है । इसलिए मैं स्वय पिताजी का दु.ख मिटाने आया हूं । मैं पिताजी की वाछित वस्तु लेने आया हू । वह तुम्हारे यहा है। मैं उसे लेकर ही लौटूंगा, खाली नहीं । मैं बलात्कार से वह वस्तु तुमसे छीनना नही चाहता । ऐसा करना होता तो मेरे आने की आवश्यकता ही न पडती । मैं तुम्हे सन्तुष्ट करके तुम्हारी चीज ले जाना चाहता हू । अगर मैं उसे न ले जा सका तो पिताजी के लिए मैंने अन्न त्याग दिया है और प्राण भी त्याग दूंगा । यह शरीर पिता का ही है । पिता के निमित्त इसे त्याग देना कोई बडा भारी त्याग नही है । इतना त्याग करके भी अगर पिता को सुखी बना सका तो मैं धन्य हो ऊंगा । पिता के दिये शरीर से इतने दिन जी लिया है और सुख भोग लिये हैं, अब अगर उन्ही को यह शरीर

गए तो देखना चाहिए कि गंगा के कुमार कैसा जहर पीते है ! दूसरे के कल्याण के लिए पिया जाने वाला जहर पीने से पहले ही जहर जान पड़ता है और उसका पीना कठिन भी होता है, परन्तु पीने के पश्चात् वह अमृत बन जाता है और पीने वाले को अमर बना देता है।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।२६ अ. ४

श्रोत्र आदि इन्द्रियों को संयम की अग्नि मे हवन करना महायज्ञ है। गंगकुमार आज ही महायज्ञ करने के लिए तैयार हुए हैं। जो आखें राजवैभव देखकर ललचाती थी, प्रसन्न होती थी, गंगकुमार उन्हे पितृहित की अग्नि मे होम देते हैं। उन्होने अपने कानो से कह दिया—हे कानो, तुम पितृयज्ञ की अग्नि की सामग्री बन जाओ। अब यह सुनने की आशा मत करो कि गगकुमार राजा है। तुम यह सुनने को तैयार हो जाओ कि सत्यवती का पुत्र राजा है और गंगकुमार सेवक है। हे नाक, तू राजा होने के लिए ऊंची मत रह, किन्तु पितृहित के यज्ञ मे पावन बनने के लिए ऊंची रह। हे पाव, तुम कर्त्तव्यपथ पर दौड़कर यह कहो कि सत्यवती का पुत्र ही राजा है। अब तक तुम अपने राज्य की रक्षा के लिए दौड़ते रहे थे, पर अब भाई के राजा की रक्षा के लिए तुम्हें दौड़ना पड़ेगा। ऐ हाथो, अब तक तुम दूसरो का अभिवादन लेने के लिए ऊपर उठ रहे हो, अब दूसरो का अभिवादन करने के लिए ऊपर उठना। अब तुम अभिवादन लेना छोड़-कर अभिवादन करना सीखो। और हे शरीर, तू सिहासन पर बैठकर चंवर ढुलवाने की इच्छा मत रख। यह महत्त्व

देने की प्रतिज्ञा करवाना चाहता है । क्या गंगकुमार को ऐसी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए ? अपना राज्य अपने सौतेले भाई को दे देना चाहिए ? गगकुमार अब बालक नही है। वह हस्तिनापुर का युवराज है और सत्ता उसके हाथ में है। ऐसे समय पर राज्य को त्याग देना कोई सरल कार्य नही है । परन्तु धर्मशास्त्र में अगाध विचार भरे पड़े हैं ।

गगकुमार ने ध्यान से शिवदास की बात सुनी । वह अपनी आत्मा को समझाने लगे—"रे आत्मा, इस भूतल पर असख्य राजा, महाराजा और चक्रवर्त्ती हो गए । परन्तु उन्हे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, जैसा पितृयज्ञ करने का सौभाग्य तुझे प्राप्त हुआ है । मैं इस पितृयज्ञ मे सारे ससार को आमन्त्रण दूंगा । हे मन, तू "इद न मम" का पाठ पढ़ने के लिए तैयार हो जा । अगर गगकुमार राजा न हुआ तो हानि क्या होगी ? संसार के असख्य मनुष्य, प्राणी क्या सभी राजा ही हुए हैं ? राजा हुए बिना कौन-सा काम रुकता है ? इस दुर्लभ मानव-जीवन का उद्देश्य राजपद को प्राप्त कर लेना नहीं है । ऐसा होता तो तेरे पूर्वज अनेक चक्रवर्त्तियो ने—जो इसी कुल मे हुए हैं—क्यो राज्य त्यागा होता ? राज्य लेना बड़ी बात है या मिलते हुए राज्य को ठुकरा देना बड़ी बात है ? इसलिए हे मन, तू दृढ़ हो जा और ऐसा दृढ हो जा कि चाहे मेरु हिल जाय पर तू न हिले । की हुई प्रतिज्ञा कभी झूठी न हो ।"

कहते हैं कि महादेव ने विष का पान किया था । किसलिए ? वास्तव में दूसरे के कल्याण के लिए विष पीने वाला ही महादेव है ? कहा जाता है कि गगा महादेव के सिर पर गई और गंगकुमार गंगा के पुत्र हैं । महादेव वह जहर पी

नहीं करूंगा ।

शिवदास ! राज्य के त्याग को तुम कोई बड़ा त्याग समझते होओगे, लेकिन मेरे लिए यह त्याग बड़ा नही है । मैं इसे तुच्छ बात मानता हूं । जैसे दाहिने हाथ मे अगूठी पहनना या बाएं हाथ मे पहनना बराबर है, उसी प्रकार बड़े भाई या छोटे भाई का राज्य करना भी बराबर है ।

शिवदास सोचने लगा—"गंगकुमार है तो वीर । कुरुवंश ऐसा ही वीर है । परन्तु ऐसे वीर गंगकुमार के लडके कौन जाने कैसे वीर होगे ? सतयुग जा रहा है और कलियुग आ रहा है । कदाचित् इनके लडकों पर कलियुग की छाया पड गई तो क्या होगा ? हकदार होते हुए भी इनके लडके राज्य नही पाएंगे और मेरा दौहित्र राज्य करेगा तो उनकी आंखों में खटकेगा । इसलिए इस अवसर पर उसका भी उपाय कर लेना उचित है ।"

यह विचार कर शिवदास बोला—"कुमार ! आपकी प्रतिज्ञा पर मुझे पूरा भरोसा है, फिर भी आपके पिता के साथ मेरी लडकी का विवाह होना कठिन दिखाई देता है। एक और बड़ी बाधा है, जिसका निराकरण करने के लिए मैं आपसे निवेदन भी नही कर सकता ।"

ऐसी गुस्ताखी भरी बात सुनकर गगकुमार को क्रोध आ जाना स्वाभाविक था । गगकुमार सोच सकते थे कि इसके सन्तोष के लिए मैंने राज्य का त्याग कर दिया है, फिर भी यह टालमटूल करने की हिम्मत करता है ! मगर गगकुमार अगर क्रोध करते तो उनकी कथा ही कैसे कही जाती ? साधारण मनुष्यो के लिए इतिहास मे कोई स्थान

अपने भाई को समर्पित कर दे। हे मस्तक, तू मुकुट की आशा न रखना। तू अपने त्याग से ही ऊंचा रह सके तो रहना। भाई के राज्य की रक्षा के लिए अगर तुझे शरीर से अलग होना पडे तो उसके लिए भी तैयार रहना।

गंगकुमार के शरीर और प्रत्येक अंग ने जब साक्षी दी तो वह बोले—शिवदास ! क्या तुझे मेरे कुल का ज्ञान नहीं है? तू कौरव-कुल को नही जानता ? कौरव-कुल मे उत्पन्न हुए दो भाइयो को यह विचार कभी आता ही नही कि यह राज्य मेरा है या मेरे भाई का है ? इस बात को तू लोगो से यहां तक कि देवो और गन्धर्वों से भी पूछ सकता है। कुरुवंशी सौतेली माता को दूसरी नही समझते। वे उसे सगी माता ही मानते हैं। जिसे पिता ने पत्नी बनाया है, वही पुत्र के लिए माता है। तुझे इतना भेदभाव मालूम पडता है, इससे जान पड़ता है कि तुझ पर तेरे कुल का प्रभाव है। तूने दूसरे राजाओ की बातें सुनी होंगी, इसीलिए मुझे भी वैसा ही समझता है। तूने पिताजी को कोरा उत्तर दिया और वह चुपचाप लौट गए। फिर भी तुझे कौरव-वंश की महत्ता मालूम नही हुई ? उन्होंने किसी प्रकार का दबाव नही डाला, मैं भी सद्भावपूर्वक याचना कर रहा हूं। फिर भी तुझे विश्वास नही आता ? विश्वास नही आता तो ले, मैं प्रतिज्ञा करता हू। मेरी प्रतिज्ञा वीर क्षत्रिय की प्रतिज्ञा है। वह कभी पलट नही सकती। चाहे शरीर से प्राण निकल जाए, चाहे सूर्य अन्धकार देने लगे, चाहे चन्द्रमा अग्नि बरसाने लगे, चाहे पृथ्वी आश्रय देना बन्द कर दे, चाहे जल और अग्नि अपना-अपना स्वभाव बदल दें, लेकिन मेरा प्रण नही पलट सकता। मैं प्रण करके कहता हूं कि मैं राज्य ग्रहण

गंगकुमार क्रोध करके शिवदास के कान ऐंठ सकते थे। उसे देश—निकाला दे सकते थे और सत्यवती को जबर्दस्ती ले जा सकते थे। गगकुमार यह सब कर सकते थे किन्तु धर्म का रास्ता यह नहीं था। धर्म का रास्ता निराला होता है। अतएव उन्होंने शांत-भाव से पूछा—अब जो बाधा रह गई है वह भी कह डालो। उसके निराकरण का मार्ग भी निकल आएगा।

शिवदास बोला—आप अपना प्रण निभाएगे, इसमें तो कोई संदेह नहीं है मगर कदाचित् आपके पुत्र ने कह दिया कि मेरे पिता का प्रण पिता जानें, मैं उस प्रण को पालने के लिए बाध्य नही हूं तो उस अवस्था में क्या होगा ? मेरा दुहिता राज्य कैसे कर सकेगा ?

गगकुमार—आखिर तुम चाहते क्या हो ?

शिवदास—इस भय की जड़ ही कट जाय तो सत्यवती का विवाह महाराज के साथ होने मे कोई बाधा न रहे।

गंगकुमार—आखिर वह जड कैसे काटना चाहते हो ?

शिवदास—आपके ब्रह्मचारी रहने से भय की जड़ नहीं रहेगी।

गगकुमार कुछ क्षणो के लिए गंभीर हो गए, मानो अपनी अन्तरात्मा से परामर्श करते हो। राज्य त्यागने की अपेक्षा यह प्रतिज्ञा बड़ी कठोर थी। फिर भी समर्थ पुरुषो के लिए संसार मे कुछ भी कठिन नही रह जाता। गग-कुमार ने शीघ्र ही अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। वे कहने लगे—मेरी माता मुझे लेकर जंगल मे चली गई थीं।

नहीं है । इतिहास में असाधारण मनुष्य ही स्थान पाते हैं। अगर उनकी असाधारणता अनुकरणीय होती है—देश और जाति के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाली होती है तब तो पढ़ने वाले लोग उन्हे मस्तक झुकाते हैं और यदि उनकी असाधारणता हेय होती है तो लोग घृणा के साथ उन्हें याद करते हैं । गंगकुमार की कथा क्यो कही जाती है, यह बात एक उदाहरण से समझाई जाती है ।

एक मकान में आग लगी । आग बुझाने के लिए बहुतेरे आदमी आये, यहां तक कि राजा भी आया और आग बुझाने का "फायर ब्रिगेड" आदि सामान भी आया । वहीं खड़ा हुआ एक आदमी आग बुझाने वालो से कहता है—"मूर्खो ! आग क्यों बुझाते हो ? इस आग के प्रताप से ही तो यहा महाराज का पदार्पण हुआ है और दूसरे इतने लोग आये हैं ।" ऐसा कहने वाले की बात गलत नही कही जा सकती क्योंकि वास्तव में अग्नि लगने के कारण ही सब लोग वहा जमा हुए थे । परन्तु इसी कारण आग लगाना ठीक है या बुझाना उचित है ? सांसारिक संघर्ष मे से ही राजनीति, लोकनीति और धर्मनीति का विकास हुआ है । परन्तु क्या उस संघर्ष को बनाए रखना उचित है ? ससार के कामशास्त्र आदि अन्यान्य शास्त्र इस संघर्ष को बढाने वाले हैं, परन्तु धर्मशास्त्र उसे मिटाता है । हमें संसार मे फैली हुई संघर्ष की ज्वालाओ को शांत करना है । अगर कोई कहता है कि इस आग को रहने दिया जाय तो हम उसकी बात नही मानते । हमे मोक्ष तत्त्व निकालना है, अतएव संघर्ष की आग बुझाना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है ।

उस मांग को सुनकर मुझे प्रसन्नता ही हुई है। तू मुझ कमल को विकसित करने वाला सूर्य है। चारण मुनि ने जो वात उस समय कही थी और जिसे मैं तब स्वीकार नही कर सका था, उसका लाभ आज तेरे निमित्त से हो रहा है। हे धीवर-राज ! विवाह करके मैं दो-चार पुत्रों का ही पिता हो सकता था, मगर विवाह न करने की प्रतिज्ञा कराकर तू मुझे सम्पूर्ण संसार का पिता बना रहा है। ले, मैं तेरे सामने प्रतिज्ञा करता हूं—

"हे देवो ! आकाश-मण्डल पर विचरण करने वालो ! सुनो। हे पृथ्वी, पानी, पावक और पवन ! तुम साक्षी हो। यद्यपि तुम्हारे नियम अटल है, तथापि चाहे वे बदल जाएं मगर मेरा प्रण नही बदलेगा। गंगा के पुत्र की प्रतिज्ञा जीवन पर्यन्त अटल रहेगी। मैं तुम सव के सामने प्रतिज्ञा करता हू कि मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूगा।"

चारण मुनि के समक्ष ली हुई प्रतिज्ञा के साक्षी देवो ने जयनाद से आकाश-मंडल गुंजा दिया। आकाश-वाणी हुई—धन्य हो ! गंगकुमार धन्य हो ! पृथ्वी तुम्हारी पाद-पाशु से पावन हुई। हे कुरुवश के अवतंस ! तुम्हारी जय हो ! युग-युग मे तुम्हारी कीर्ति अक्षय रहेगी ! संसार तुम्हारे यश का वर्णन करते अघाएगा नही। हे धर्म की साक्षात् प्रतिमा ! तुम्हारा आदर्श अक्षुण्ण रहे। प्रण-पालन की तुम्हारी शक्ति अवाध रहे !

शिवदास अपनी लड़की के ही हित का विचार करता है, लेकिन गंगकुमार के हक में यह प्रतिज्ञा बहुत हितकर सिद्ध हुई। देवगण फूल बरसा कर कहने लगे—"हम आपकी

मैं प्रकृति से शिक्षा पा रहा था । उस समय मुझे एक चारण मुनि के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मुनि महाराज का तेज अपूर्व था। मैंने विचार किया कि यह तेज किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? जब मुनि ने अपना ध्यान समाप्त किया तो मैंने प्रश्न किया—भगवन् ! आपमे यह अद्भुत तेज कहा से आया है ? मुनिराज ने धीमे और मधुर स्वर में कहा— "त्याग और व्रत से।" मैंने उनसे निवेदन किया—प्रभो, मैंने क्षत्रियोचित सब विद्याएं तो सीख ली हैं मगर मुझे ऐसे तेज की अभिलाषा है। मेरी प्रार्थना पर उन्होने उपदेश देते हुए कहा था—ब्रह्मचर्य दिव्य शक्ति और दिव्य तेज प्रदान करने वाली महान् रसायन है। जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है, उसके लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नही रहती। उनका उपदेश सुनकर मैं पूर्ण व्रत तो अंगीकार नही कर सका, परन्तु मैंने स्वीकार किया था कि मैं (१) निर-पराध त्रस प्राणी की हिंसा नहीं करूंगा (२) जानबूझ कर मनुष्य, पशु या पृथ्वी के विषय मे असत्य भाषण नही करूंगा (३) किसी का हक छीनकर मालिक बनने का कार्य (चोरी) नही करूंगा और (४) यदि पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन कर सका तो अच्छा ही है, अन्यथा इस समय तो यही प्रतिज्ञा करता हू कि परस्त्री को माता बहिन के समान सम-झूंगा। हे शिवदास, जान पड़ता है कि उन मुनि की शक्ति आज तुझ मे आ गई है। इसी कारण तू मुझे ब्रह्मचर्य पालने की प्रेरणा करता है।

हे शिवदास, तेरे हृदय को पिता ने पहचाना था और तेरा हृदय वास्तव मे उत्तम है। इसी कारण तू अपनी लडकी का अधिकार सुरक्षित कर रहा है। तूने मुझ से जो कुछ मागा,

आए हैं, किन्तु अपने देश के हित के लिए भारत पर शासन करने आए हैं।" मगर आप तो भारत में रहते हुए भी अंग्रेजों की वेष-भूषा की भद्दी नकल करने मे अपना गौरव समझते हैं। आपको भारतीय वस्त्र पसन्द नहीं, भारतीय भोजन पसन्द नहीं, भारतीय आदर्श पसन्द नहीं और भीष्म का कार्य भी पसन्द नहीं है। ऐसा करके आप अपनी मातृभूमि की इज्जत नहीं खो रहे हैं ?

अगर आप भारतीय हैं—भीष्म की सन्तान है तो कम से कम परस्त्री का ही त्याग करो और भारतीय वस्तुओ से घृणा मत करो। आप अपना कल्याण चाहते हो और सुखमय जीवन बिताना चाहते हों तो भारत की पवित्र परम्परा का महत्त्व समझो, विदेशो का अन्धानुकरण मत करो। इंग्लैंड वालों को अगर इंग्लैंड प्यारा है तो भारतीयो को भारत प्यारा क्यो न हो ? भारतीय होकर भी इंग्लैंड का खान-पान, रहन-सहन अपनाने तथा फैशन के चक्कर में पड़ जाने से कभी-कभी कितना कष्ट उठाना पड़ता है, यह बात एक उदाहरण द्वारा बतलाना ठीक होगा।

किसी आदमी के घर पुराने ढग की स्त्री है। वह पुराने ढंग का भोजन बनाना जानती है। उसे नई फैशन का भोजन बनाना नहीं आता। पति होटल मे भोजन करता है और होटल सरीखा भोजन न बना सकने के कारण अपनी स्त्री को डाटता है। कुछ समय तक इसी प्रकार चलता रहा। मान लीजिए, इस कारण से स्त्री पुराने ढग का भोजन बनाना भी भूल गई। उधर होटल वाला भी चल दिया। अब पति पर कैसी बीतेगी ?

निष्काम पितृभक्ति पर मुग्ध हैं। यह प्रतिज्ञा करने में आपको कठिनाई मालूम होती या किसी कामना से प्रेरित होकर प्रतिज्ञा करते तो उसका महत्त्व इतना अधिक न होता। यह प्रतिज्ञा करके आपने अपने को जगत् का पिता बना लिया है। आपने भारत-भूमि को कल्याणमयी बना दिया है। यह भीषण प्रतिज्ञा करने के कारण आप आज से "भीष्म" कहलाएंगे।"

इस प्रतिज्ञा के कारण भीष्म धन्य है या भारत धन्य है? हमारी समझ मे इस के लिए केवल भीष्म ही धन्यवाद के योग्य नही, भारत भी धन्यवाद के योग्य अवश्य है। चीन मे एक ऐसी प्रथा है कि जब पुत्र कोई उत्तम काम करता है तो उसके पिता को उपाधि दी जाती है। इस प्रथा के कारण संतान-परम्परा के सुधार की प्रेरणा मिलती है। जो व्यक्ति उपाधि लेना चाहता है, वह अपने पुत्र को सुधारता है। भारत देश आपका कुछ लगता है? अर्थात् आपका कोई सबंधी है या नही? आज भीष्म नही है लेकिन भारतीय होने के नाते आप भारत की संतान तो हैं न? भीष्म ने अपने अपूर्व त्याग द्वारा भारत का गौरव बढाया, ऐसा गौरव जिस की उपमा ससार मे मिलनी कठिन है। मगर भारत की सतान होकर भी आप भारत के लिए कितना त्याग करते हैं? जिन भारतीयों को भारतीय खान-पान और रहन-सहन बुरा मालूम होता है, उन्हें भारत का सपूत किस प्रकार कहा जा सकता है? ऐसे लोग भारत के कपूतो मे ही गिने जा सकते हैं। भारत के किसी अंग्रेज गवर्नर से पगड़ी बांधने के लिए कहा जाए तो क्या वह राजी होगा? वह कहेगा—"हम अपने देश का गौरव घटानें यहां नही

पहले मुझसे ही बातचीत की थी। मैंने सोचा—मैं जिन पिता के घर रहती हू, जो मेरा पालन-पोषण कर रहे हैं, उनकी आज्ञा के बिना विवाह करना उचित नही है। लेकिन तुमने गंगकुमार से ऐसी प्रतिज्ञाएं करवा डाली! तुमने मेरा हित देखकर ही सब कुछ किया है, पर दूसरे का भी थोड़ा भला तो देखना चाहिए था! तुमने मुझे मुंह दिखलाने योग्य भी नही रखा! मैं कौन-सा मुंह लेकर महाराज के पास जाऊंगी? पिताजी, आपने घोर अनर्थ कर डाला। मैं अपने जीवन मे शान्ति का अनुभव कैसे कर सकूंगी? मेरा हृदय सदैव संताप की आग मे जलता रहेगा। आपने मेरे जीवन में कांटे बो दिये!

सत्यवती केवल नाम से ही सत्यवती नही वरन् काम और विचार से भी सत्यवती है। वह सत्य का विचार कर रही है। वह शिवदास से कहती है—"गंगकुमार जैसा पुरुष तुम्हारे द्वार पर आया और तुमने ऐसी प्रतिज्ञा करवाई! यह बड़ा ही अनुचित हुआ है। मेरी समझ में नहीं आता कि जो अवांछनीय घटना घट गई है, उसे किस प्रकार पलटा जाय? मेरे हृदय का दाह किस प्रकार शांत हो सकता है?

इसके बाद सत्यवती ने कुमार गग से कहा—"आप मुझे माता कहते हैं परन्तु वास्तव में आप मेरे पिता होने योग्य हैं। आपके त्याग के कारण मेरा मस्तक झुक गया है। मैं लज्जा के अथाह जल मे डूबी जा रही हूं। आपने स्वेच्छा से—आत्मा की आन्तरिक प्रेरणा से इस प्रकार की प्रतिज्ञा की होती तो मुझे कोई सताप न होता मगर आपने जो भीषण प्रण किया है उसका निमित्त मैं हूं। ऐसी दशा में

इस उदाहरण से आजकल के फैशन की सभी बातें समझी जा सकती है । मुंह पर पाउडर मल कर नाटक-सिनेमा में नाचने वाली स्त्रियों पर जो मुग्ध हो जाता है, उसे भोली और सीधी-सादी गृहिणी क्यों अच्छी लगेगी ? लेकिन सिनेमा की नटी क्या सुख–दुःख में समान भाव से साथ दे सकती है ?

माता गगा के नाम से गंगकुमार का नाम "गगकुमार" पड़ा था । मुनि के समक्ष व्रत धारण करने से उनका दूसरा नाम "देवव्रत" हुआ और फिर भीषण प्रतिज्ञा करने के कारण तीसरा नाम "भीष्म" हुआ ।

गंगकुमार की प्रतिज्ञा सुनकर शिवदास एक बार तो दहल उठा ! उनकी वीरता और पितृभक्ति देखकर वह चकित रह गया । उसने सत्यवती को बुला कर कहा— "बेटी, गंगकुमार ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा की है, इसलिए अब तुम जाओ और गंगकुमार की माता बन जाओ ।"

सत्यवती को गंगकुमार की प्रतिज्ञाओं का हाल सुनकर अत्यन्त आश्चर्य और खेद हुआ । वह लज्जा के कारण झुक गई । उसे शिवदास पर बेहद क्रोध भी आया । वह कहने लगी—स्वार्थी पिता ! तुमने यह क्या कर डाला ! तुम जिसकी माता बनने को मुझसे कह रहे हो, वह क्या मेरा पुत्र नही हो गया ? मेरे पुत्र के साथ तुमने घोर अन्याय कैसे कर डाला ? कौन जानता है कि मेरे संतान होगी भी या नही होगी ? परन्तु पहले से इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने को जो तैयार हो सकता है, उस पर अविश्वास करने का क्या कारण था ? आखिर तो तुम धीवर ही हो न ! महाराज ने

पुत्र पाकर कौन निहाल न हो जाएगी ? जिस कुल मे तुम्हारे जैसे उत्तम पुरुष विद्यमान हैं, उसके साथ जुडना क्या कम सौभाग्य की बात है ? मैं उससे जुड़ने को तैयार हूं ।

भीष्म ने सत्यवती को रथ मे बैठ जाने को कहा । सत्यवती रथ में बैठ गई । सत्यवती को जाते देख शिवदास के आंसू बहने लगे । पिता से दूर होने के विचार से सत्यवती भी रोने लगी । उसी समय भीष्म के पास आकर शिवदास ने कहा--गंगकुमार ! आपका अनुमान सत्य है । मैं सत्यवती का सिर्फ पालक पिता हूं, जन्मदाता पिता नही ।

शिवदास ने अब तक बड़े यत्न से जो भेद छिपा रखा था, उसे आज खोल दिया । सत्यवती और भीष्म--दोनों आश्चर्य करने लगे ।

सत्यवती ने सोचा था--"जिसका हृदय इतना मलिन है, जो दूसरे के न्यायसगत अधिकार को भी सहन नही कर सकता और केवल अपना ही अपना अधिकार चाहता है, उस पिता से मेरा जन्म कैसे हुआ ? अपनी सन्तान के स्वार्थ के लिए दूसरो के हक को हड़प लेना, उत्तम पुरुषो का कर्त्तव्य नही है ।' इस आशय की बात उसने शिवदास से पहले कह भी दी थी ।

शिवदास मच्छीमार है । अपने तुच्छ लाभ के लिए मछलियो के गले मे कांटा फंसाना इसका काम था । इस कारण अपनी संतान के हित के लिए उसने दूसरे की संतान का हित भुला दिया । दूसरे की संतान का हित न देखने के कारण सत्यवती ने उसे फटकार भी बतलाई । परन्तु सत्यवती के साथ आप भी क्या शिवदास को बुरा कहेंगे ? शिवदास

मैं किस तरह आपके साथ चलूं ? आप स्वयं ब्रह्मचर्य पाल रहे हैं फिर इस झमेले में क्यों पड़े ? आप ब्रह्मचर्य पाल सकते हैं और पालने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं, परन्तु मैं ब्रह्मचर्य नही पाल सकती । इसी बात का यह झगड़ा है !"

भीष्म सत्यवती की पश्चात्तापयुक्त वाणी सुनकर आश्चर्य करने लगे । उन्होंने मन ही मन सोचा—कहां शिव-दास और कहां सत्यवती ? दोनों की प्रकृति मे कितना महान् अन्तर है ? वास्तव में सत्यवती कौरव-कुल की माता होने योग्य है । पिताजी की पसन्द अनुचित नहीं है ।

उन्होने सत्यवती से कहा—माता आपका हृदय बहुत उत्तम है । मुझे आश्चर्य है कि आपका जन्म धीवर के कुल में कैसे हो सकता है ? आपका हृदय किसी भी उच्च कुल की सुसंस्कृता महिला से हीन नही है । यद्यपि आपका कथन अयथार्थ नही कहा जा सकता, फिर भी आप मेरा परिश्रम निष्फल नही करेंगी । आप चाहे चलें या न चलें, मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूं और इस जीवन के साथ ही उसका अन्त होगा । मैं न राज्य करूंगा और न विवाह करूंगा । अगर आपकी मुझ पर कृपा है तो आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए । आप मेरे साथ चलिए और पिताजी का कष्ट मिटाइए । आप जैसी उत्तम ाता की मौजूदगी मे राज्य करने का तो कोई प्रश्न ह पस्थित न होगा ।"

सत्यवती अपने संकोच को अभी तक नही जीत सकी । लेकिन उसने कहा—पुत्र, कौन जाने मैं पुत्र को कब दूंगी, या नहीं दूंगी, परन्तु तुम्हारे जैसा महापुरुष माता कहता है, यह मेरा परम सौभाग्य है । तुम-सा

उचित नही था । लेकिन आखिर तो मैं मच्छीमार धीवर ही ठहरा न ! अब मैं बतलाता हू कि सत्यवती मेरे यहा किस प्रकार आई ।"

शिवदास फिर कहने लगा—भीष्मजी ! यमुना के तट पर अपना धंधा करके मैं थक गया था । मैं अशोकवृक्ष के नीचे जा पड़ा । पडे-पड़े मुझे विचार आया कि मैं कितना अभागा हू कि मेरे कोई सन्तान नही है ! यो तो मैं पाप का घन्धा करता हूं, मगर मैंने कोई गुप्त पाप नही किया । फिर मेरे यहा सन्तान क्यो न हुई ? मै अपनी सारी जिन्दगी के कार्यों की आलोचना करता हुआ चिन्ता में डूबा था कि इतने मे मैंने एक आश्चर्य देखा । मैंने देखा कि आकाश मे फेंकी हुई एक कन्या चली आ रही है । वह कन्या पास हो, घास की एक क्यारी मे गिरी । मैं भागा हुआ उस क्यारी के पास गया और कन्या को देखकर मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे जन्मांध को अचानक आखें मिल गई हो । मैंने सोचा— कदाचित् मेरी पत्नी किसी कन्या को जन्म देती तो वह इतनी सुन्दर न होती । यह कितनी खूबसूरत कन्या है ? मैं इसे पराई न समझकर अपनी ही समझूंगा । यह स्वर्ग लोक से मानो मेरे लिए ही आई है ।"

मैं कन्या को अनमोल द्रव्य की भाति उठाकर चलने को तैयार हुआ ही था कि मुझे दिव्य–वाणी सुनाई दी— "यह कन्या एक विभूति है । तू इसका जितना हित करेगा, तेरे लिए अच्छा ही होगा । यह कन्या रत्नपुरी के रत्नागद राजा की रत्नवती रानी की कन्या है । रत्नागद के एक शत्रु ने क्रोध करके रत्नागद की सतान को नष्ट करने के

ने कम से कम अपनी सन्तान का हित तो देखा है ! आप तो अपने स्वार्थ के सामने अपनी सन्तान के हित को भी नष्ट करने से नहीं चूकते ! कुछ हजार रुपये गिना कर अपनी कन्या को बूढे के गले मढ़ देने वालो के साथ इस मच्छीमार की तुलना तो करो ! अपनी सन्तान के हित के लिए दूसरो का हक छीनने वाला अगर कोली—मच्छीमार है तो उन्हें क्या कहना चाहिए, जो अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए अपनी और सन्तान का हक छीन लेने मे लज्जित नही होते !

शिवदास फिर कहने लगा—"पुत्री ! तू यहां इतनी बड़ी हुई, मगर तू ने आज तक किसी को मेरे ऊपर आक्षेप करते नहीं सुना है। जैसे अगरबत्ती जल कर अपनी सुगन्ध देती है, उसी प्रकार तू ने भी समय पर अपनी सुगन्ध फैलाई है। तू मेरे कार्य से प्रसन्न नही हुई। तू ने सच्ची बात कही है। अब तुझे यह पश्चात्ताप है कि ऐसे मलिन हृदय से तेरा जन्म कैसे हुआ ? लेकिन बेटी, तू पश्चात्ताप मत कर। तू इस हृदय से उत्पन्न नही हुई।

सत्यवती—पिताजी, मेरी समझ में कुछ भी नही आ रहा है। क्या सचमुच में आपकी कन्या नही हूं ?

शिवदास—नहीं, तुम मेरी कन्या नही हो। कांटों की डाली कल्पवृक्ष की रक्षा कर दे तो इसमे उसके लिए अभिमान का कोई कारण नही है। सत्यवती रूपी कल्पवृक्ष मेरे यहां पला, यह बात दूसरी है, पर सत्यवती मेरी कन्या नही है। भीष्मजी, इस कन्या ने मुझसे जो कुछ कहा है, ठीक ही कहा है। वास्तव मे मैं आपको पहिचान नही सका। आप जैसे उच्चकुलीन महानुभाव से ऐसी प्रतिज्ञा करवाना

था और क्या खिला—पिला सकता था ? मगर इस भोली कन्या ने मुझे किसी चीज के लिए परेशान नहीं किया। मैंने जो कुछ इसके सामने रख दिया, खुशी-खुशी इसने ग्रहण किया। कभी कोई फरमाइश नही की और न नाक सिकोड़ा। यह सब प्रकार से मुझे और मेरी पत्नी को सहायता पहुंचाती रही। इसकी सगति से मुझमे और मेरी पत्नी मे सत्य का प्रकाश प्रकट हुआ है। उस सत्य के प्रकाश मै मैं देख पाया कि किसी का गला काट कर अपना पेट भरना उचित नहीं है। तभी से मैंने मछली मारना त्याग दिया और नाव चला कर अपनी आजीविका चलाने लगा। नाव चलाने के कष्टकर और सकटपूर्ण कार्य में भी सत्यवती ने मुझे खूब सहायता पहुचाई है। यद्यपि मैं अपनी नाव द्वारा गरीबो को बिना पैसे लिये ही पार उतारता रहा हू, फिर भी मुझे पैसे की कभी कमी नही रही। मुझे आशा है कि सत्यवती के दिये प्रकाश से सहज ही मेरे जीवन की नाव भी किनारे लग जायगी और कौरव-कुल की नौका को वह सकुशल पार लगायगी।"

"हे कुमार ! मैंने आपको प्रतिज्ञा के बन्धन मे बाधकर बड़ी भूल की है। अब मै नहीं चाहता कि सत्यवती का पुत्र ही राज्य करे और आप राज्य न करें तथा विवाह भी न करें। आपने मेरी प्रेरणा से ही यह प्रतिज्ञा की है, अतएव मै अपनी प्रेरणा वापिस लेता हूं और आपको अपनी ओर से प्रतिज्ञामुक्त करता हूं।"

गगकुमार ने सत्यवती की ओर उन्मुख होकर कहा—माता, तुम मेरी ही नही, सारे संसार की माता होने योग्य हो।

लिए उसे हरण किया था मगर कन्या समझकर उसने मार डालना उचित नही समझा । वह इसे यहां छोड़ गया है। यह कन्या राजा शांतनु की पत्नी और सम्राट् की माता होगी ।

इतना कहकर शिवदास भावावेश से गद्गद् हो गया। उसने फिर कहा—"हे गंगकुमार ! यही वह कन्या सत्यवती है।"

शिवदास के मुख से अपना यह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर सत्यवती अचरज मे पडी हुई कहने लगी—पिताजी ! आवेश में आकर मैंने आपके प्रति जो अनुचित शब्द कह डाले हैं, उनके लिए आप क्षमा करें । आपने सदैव मेरा हित किया है । आपने जितना मेरा हित चाहा है, शायद सगा पिता भी न चाहता । यह बात दूसरी है कि आपने गंगकुमार से बहुत बड़ी और कड़ी प्रतिज्ञा करवाई है, फिर भी आपके हृदय में किसी प्रकार का स्वार्थ नही था । आपने इसी मे मेरा एकान्त हित समझा था ।

शिवदास—"बेटी सत्यवती, तू सचमुच सत्यवती है। तूने अपने हित की उपेक्षा करके भी सत्य बात प्रकट कर दी।"

सत्यवती—"मैं आपकी कृपा से ही जीवित हू । आपका मुझ पर असीम उपकार है । मैं आपकी चिर-ऋणी रहूंगी । मेरी प्रशसा करके अब उस ऋण को अधिक न बढ़ाइए ।"

शिवदास, गंगकुमार की ओर उन्मुख होकर कहने लगा—"कुमार ! मेरे यहा रहकर सत्यवती ने मेरा बडा उपकार किया है । मैं गरीब, इसे क्या तो पहना-ओढ़ा सकता

हैं कि अपनी मातृभूमि को बदनाम करने वाला कोई कार्य न करें। अगर आप इतना ख्याल रखे कि आपके किसी कार्य से भारत की लाज न लुटने पावे, तो भी कुछ कम नही है। अगर आप इतना भी कर सके तो भीष्म का चरित सुनना आपके लिये सार्थक हो जाएगा।

सत्यवती, शान्तनु के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी हुई। अचानक सत्यवती को सामने पाकर राजा को विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—यह मैं क्या देख रहा हूं? क्या यह वही सत्यवती है, जिसे याचना करके भी मैं नही पा सका? है तो वही सत्यवती, एकाएक यह यहा कैसे?

दूसरी ओर गंगकुमार और मन्त्रियो को खड़ा देखकर राजा ने कहा—"मैं यह सब क्या स्वप्न देख रहा हूं!"

मन्त्री—नही, महाराज! आप जागृत हैं और स्वप्न नहीं, सत्य देख रहे हैं। जब आपको चिन्तामणि सरीखे पुत्र गगकुमार प्राप्त हैं तो आपके लिए कमी किस चीज की हो सकती है?

राजा—पहेली मत बुझाओ। स्पष्ट कहो, सत्यवती यहां कैसे आई है?

मन्त्री—कुमार शिवदास के घर गये। उन्होने प्रतिज्ञा की है कि राज्य मैं नहीं करूंगा, सत्यवती का पुत्र करेगा। यह प्रतिज्ञा करके कुमार इन्हें ले आये हैं।

राजा—कुमार, यह तुमने क्या गजब किया? मैं तो तुम्हारा खयाल करके ही मन मसोसे बैठा था।

तुम्हारी बात सुनकर ही तुम्हारे पिता के हृदय मे परिवर्तन हुआ है। भले ही इनका हृदय पलट गया है पर मेरी प्रतिज्ञा नही पलट सकती। प्रतिज्ञा करते समय मैने कोई छूट नहीं रखी है। मैं पहले ही कह चुका हू कि ससार के पलट जाने पर भी मेरी प्रतिज्ञा नही पलटेगी। क्षत्रिय का प्रण मिथ्या नही हो सकता। वह जो प्रतिज्ञा कर चुका, कर चुका। वह फिर पलट नही सकती।

गगकुमार और सत्यवती ने शिवदास को यथोचित नमस्कार किया। रथ रवाना हुआ। शिवदास की आखें बरसने लगी और सत्यवती की भी। जब तक रथ दिखाई दिया, शिवदास उसी ओर आखे गडाए रहा।

किसी भी देश और जाति की प्रतिष्ठा एवं अप्रतिष्ठा, उसके अगभूत व्यक्तियो के आचरण पर निर्भर रहती है। एक भी भारतीय अपने उच्चतम आचार से भारत का मुख उज्ज्वल कर सकता है। इसके विपरीत एक भारतीय अपने निन्दनीय आचरण के द्वारा अपनी मातृभूमि का सिर नीचा कर सकता है। एक भीष्म ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके भारतीयो के समक्ष अमर और अनुपम आदर्श उपस्थित किया है। इस आदर्श मे आत्मोत्सर्ग की महत्ता है, पितृभक्ति की पवित्र प्रेरणा है, ब्रह्मचर्य का वीरतापूर्ण सन्देश है, विषय-विरक्ति की विज्ञप्ति है। भीष्म के आदर्श त्याग से भारत का गौरव बढा है। यह भारत ही भीष्म का पिता—माता है। आप भी इसी भारत की सन्तान हैं। अगर आप भीष्म की बराबरी नही कर सकते तो उनके मार्ग पर धीमी-धीमी गति से अवश्य चल सकते हैं। कम से कम इतना तो कर सकते

शान्तनु की यह स्थिति देखकर गंगकुमार असमंजस में पड़ गए। वे सोचने लगे—मैंने पिताजी को सुखी बनाने के लिए जो किया, उससे तो उनका दुःख ही बढ़ा। इस समय सान्त्वना देने की आवश्यकता है। अतएव वे पिता से कहने लगे—

"पिताजी ! आप सोचते हैं कि गंग का राज्य गया और उसे ब्रह्मचारी रहना पडेगा, लेकिन क्या राज्य का त्याग और ब्रह्मचर्य का पालन बुरा है ? आप ब्रह्मचर्य पालते तो देशतः ही उसका पालन कर सकते थे। लेकिन देशतः पालन करने पर भी ब्रह्मचर्य अच्छा माना माता है, वह अगर पूर्णरूप से पाला जाय तो क्या अधिक अच्छा न होगा ? अगर मैं किसी शत्रु को जीतकर लौटता तो आपके हर्ष का पार न रहता। पर मैं प्रबल कामशत्रु को जीतकर आया हू तो आप शोक और सताप क्यो मान रहे हैं ? आपको कृपा और माता की शक्ति से ही मैं काम को जीतने मे समर्थ हो सका हूं। अन्यथा उसे जीतना सरल नही था।"

आज भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य की बड़ी कमी है। ब्रह्मचर्य के अभाव ने प्रजा को निर्बल, निस्तेज, अल्पायु रोगी और गुलाम बना दिया है। आधुनिक कॉलेजो के अधिकाश विद्यार्थियो के चरित्र की आलोचना सुनकर घोर निराशा होती है। जब शिक्षितो का यह हाल है तो अशिक्षितों का कहना ही क्या है ?

गगकुमार कहते हैं—"पिताजी, आपको मेरे राज्य-त्याग की चिन्ता है, पर त्याग के लिए भी क्या पश्चात्ताप की आवश्यकता है ? आप और मैं त्यागियो के चरणो मे मस्तक

मन्त्री—महाराज ! जो होना था, हो चुका है। अब भीष्म की प्रतिज्ञा नहीं टल सकती। ऐसा पुत्र पाने के लिए अपने भाग्य की सराहना कीजिए।

राजा—कैसी विचित्र बात है।

मंत्री—महाराज ! यह विचित्र बात नही है। विचित्र बात तो यह है कि कुमार ने धीवर का सन्देह निवारण करने के लिए आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतीज्ञा की है।

राजा यह सुनकर व्याकुल हो उठे। उन्हे ऐसी चोट पहुंची, मानो किसी ने हृदय मे भाला भौंक दिया हो। फिर कहने लगे—क्या इससे अच्छा यह न होता कि मैं स्वय ब्रह्मचर्य का पालन करता। गंगा मुझे छोड़कर चली गई। वह ब्रह्मचर्य का पालन कर रही है—तपस्विनी का जीवन यापन कर रही है। उसने अपने हृदय का हार, अपने सासारिक जीवन का सार गगकुमार मुझे उपहार में दिया था। इसकी यह दशा हुई। और वह भी मेरी दुर्बुद्धि के कारण। हाय, मैं ब्रह्मचर्य पालता तो कौन बड़ी बात हो जाती। मुझसा कामी और गगा-सा धर्मी और कौन मिलेगा? यह पुत्र नही, कोई दिव्य शक्ति है, जिसने पुत्र के रूप में मेरे यहा अवतार लिया है। मैं क्या इसका पिता कहलाने योग्य हूं। अपने औरस पुत्र के जीवन को सुकुमार भावनाओं का अकाल मे ही घात करने वाला ऐसा दुष्ट पिता संसार में दूसरा कौन होगा? मैं कैसा राक्षसी विचार वाला पामर प्राणी हूं। अरे गंगकुमार ! मेरे जैसे दुष्ट के लिए तूने यह क्या कर डाला? मुझे अपने पापो का प्रायश्चित्त क्यों नही करने दिया?

आप त्याग न कर सकें तो धर्मकथा के त्याग को तो बुरा न कहे।

मेवाड के इतिहास मे दो घटनाएं ऐसी मिलती हैं, जो भीष्म के त्याग की और कृष्ण द्वारा रुक्मिणी की रक्षा की अधिकांश मे पुनरावृत्ति-सी जान पडती है। मेवाड़ के इतिहास में भीष्म के त्याग की थोड़ी-बहुत समता करने वाली घटना चुंडा का राजत्याग है। और जैसे कृष्ण ने रुक्मिणी की रक्षा की थी, उसी प्रकार राजसिंह ने रूपनगर की राजकुमारी की रक्षा की थी। कदाचित् कोई भीष्म के त्याग को काल्पनिक घटना मानता है तो चुंडा का त्याग तो ऐतिहासिक है। भीष्म-सा त्याग नही कर सकते तो चुंडा-सा त्याग ही करो, मगर काल्पनिकता का बहाना करके त्याग से बचने का प्रयत्न मत करो। ऐसा करने से भीष्म का कुछ बिगाड नही होगा, तुम्हारी जिन्दगी ही बर्बाद होगी।

वही बात हमारे काम की है जो धर्म के साथ संगत है। धर्म के साथ जिसकी संगति नही है, उससे हमें कोई प्रयोजन नही। गगकुमार ने राज्य का अधिकार भी त्यागा था और ब्रह्मचर्य भी स्वीकार किया था। चुंडाजी ब्रह्मचर्य का पालन न कर सके, फिर भी उन्होने जो त्याग किया, उसका मूल्य कुछ कम नही है। पिता की साधारण तौर पर हसी मे कही हुई बात से अपने आपको राज्याधिकार से वंचित कर लेना, भाई के राज्य का प्रबन्ध करना और राज्य की सारी बागडोर हाथ मे होते हुए भी विमाता के सन्देह के कारण राज्य की सीमा से बाहर निकल जाना, कोई सरल बात नही है। चुंडाजी के इस प्रकार चले जाने पर राम की भी

टेकते हैं त्यागी को महान पुरुष मानते हैं। कुरुवंश मे एक मे से एक बडे त्यागी हुए हैं। फिर चिन्ता क्यो करते हैं ? मैंने अपने भाई के लिए अगर राज्य त्याग दिया तो कौन-सा बड़ा त्याग कर दिया है ? आपकी इस चिन्ता से तो भरत के लिए राम का राज्य त्यागना भी बुरा समझा जाएगा। "मैं" और "मेरा" को लेकर ही संसार के सारे झगड़े खड़े होते हैं। अपने भाई के लिए त्याग करना कोई त्याग ही नही है। राज्य भाई का होगा और भाई मेरा होगा तो राज्य भी मेरा ही रहेगा। इसमे खेद का कोई कारण नही है। मैंने जो कुछ त्याग किया भी है, वह पितृभक्ति की प्रेरणा से ही किया है। अगर आप पितृभक्ति को हेय न मानते हों तो चिन्ता का त्याग कीजिए और इन माता के साथ विवाह करके मुझे गंगा माता की गोद के बदले माता सत्यवती की गोद मे रखिए।"

गगकुमार के प्रिय शब्दो ने शान्तनु को आश्वासन दिया। उनकी चिन्ता कम हो गई। उन्होने सत्यवती के साथ विवाह किया और आनन्द से समय व्यतीत करने लगे।

आज के बहुत से लोग कहा करते हैं—भीष्म की कथा पौराणिक कथा है और पौराणिक कथा काल्पनिक होती है—सत्य नहीं। हम तो सिर्फ इतिहास की बात ही सच्ची मानते है।

वास्तव मे धर्मकथा को हम भी इतिहास नही कहते, क्योंकि धर्मकथा के सामने इतिहास तुच्छ है। हमारा अभि-प्राय यह नही है कि आप धर्मकथा को इतिहास के रूप मे ही मानें, लेकिन धर्मकथा से निकले हुए सत्य के प्रकाश को स्वीकार करे। धर्मकथा मे बतलाए हुए [illegible]

में वह गालियां दे रहा था, बादशाह वह भाषा नहीं समझता था। बादशाह के दो वजीर वही मौजूद थे और वे अपराधी की भाषा समझ रहे थे। बादशाह ने एक वजीर से पूछा—यह क्या कह रहा है ?

वजीर ने कहा—यह आपको दुआ दे रहा है। कहता है कि वास्तव में मैंने अपराध किया था। इस लोक मे दण्ड से बच भी जाता तो परलोक मे दोहरा दण्ड भोगना पडता। अच्छा हुआ, बादशाह ने मुझे दण्ड देकर परलोक मे ज्यादा दंड भोगने से बचा लिया। बादशाह अमर रहे !

यह सुनकर बादशाह बहुत खुश हुआ। उसने कहा—अपराधी को सजा देने का उद्देश्य यही है कि उसका हृदय बदल जाय। जब इसका हृदय बदल गया है तो इसे फांसी लगाने से क्या लाभ है ?

बादशाह ने उसकी सजा माफ कर दी। अपराधी प्रसन्न होता हुआ वहा से चला गया।

दूसरा वजीर नाराज होकर कहने लगा—मालिक के सामने इस प्रकार झूठ बोलने का काम इन्ही से बन सकता है। ऐसा विश्वासघात दूसरा नही करेगा।

बादशाह ने पूछा—बात क्या है ?

दूसरे वजीर ने कहा—वह अपराधी पापी आपको मनचाही गालिया दे रहा था। फासी की सजा पा चुकने के बाद भी उसे पश्चात्ताप नही था। फिर भी इन्होंने झूठी बात कहकर उसे छुड़ा दिया।

बादशाह दोनो वजीरो पर विश्वास करता था। वह

याद आ जाती है। राम चाहते तो कैकेयी को घुड़की बता सकते थे कि मेरे अधिकार का राज्य छीनने वाली तुम कौन होती हो ? लेकिन सोच मे पड़े हुए पिता को चिन्तामुक्त करके राम वन को चल दिये। इसी प्रकार चुंडाजी भी माता को टरका सकते थे कि राज्य मेरा है, उस पर मेरा अधिकार है, तुम दखल देने वाली कौन हो ? अगर राम और चुंडाजी अपनी-अपनी सौतेली माता को ऐसा उत्तर देते तो वह कुछ भी नही कर सकती थी परन्तु उन्होने ऐसा नही किया।

चुंडाजी की बात ऐतिहासिक है और भीष्म की कथा धर्मशास्त्र की है। धर्मशास्त्र की यह कथा ऐतिहासिक हो तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ? इस कथा मे कोई भी ऐसी वस्तु नही है, जो उसकी ऐतिहासिकता का विरोध करती हो। फिर भी मेरा कहना तो यह है कि धर्मकथा को इतिहास की दृष्टि से न देखकर आदर्श की दृष्टि से देखना चाहिए। हमें देखना चाहिए कि भीष्म के आदर्श ने जगत् की कुछ भलाई की है या नही ? और कोई बुराई तो उत्पन्न नही की ? किसी भी बात के असली आदर्श पर पहुचना चाहिए और वही आदर्श अपनाना चाहिए, जिससे स्थायी शांति प्राप्त हो सके। यही बात एक उदाहरण द्वारा समझिए।

एक बादशाह ने किसी अपराधी को फासी की सजा दी। अपराधी ने सोचा—अब मैं मौत का शिकार होने ही वाला हूं, फिर मन की क्यो न निकाल लूं ? यह सोचकर उसने बादशाह को खूब गालियां सुनाईं। यद्यपि बादशाह अपराधी द्वारा दी जाने वाली गालिया सुन रहा था, मगर जिस भाषा

अपराध किया है, वह कारण हम में भी मौजूद है या नहीं ? अपराधी ने मैली चोरी करके किसी को लूटा है और हम सफेद चोरी करके तो किसी को नही लूटते हैं ? बसे हुए सुन्दर ग्राम को बम पटककर नष्ट कर देना क्या अपराध नही है ? (परमाणु बम के द्वारा हिरोशिमा जैसे बड़े नगर को धूल में मिला देना और लाखो निरपराध बालको, स्त्रियो एव नागरिको की हत्या कर डालना एक ऐसा भयानक अपराध है, जिसका मुकाबिला भीषण से भीषण हत्यारे का अपराध भी नही कर सकता । मगर आज ऐसा करने वाले विजेता अपराधी पराजित देशो के अपराधो का हिसाब लगाने बैठे हैं और उन्हे सजा सुना रहे हैं ! ऐसे न्याय की बलिहारी !—सम्पादक)

जैसे बादशाह अपराधी की बात नही समझता था, उसी प्रकार आप भी नही समझते कि कौन-सा धर्म सच्चा है और कौन-सा नही ? ऐसी दशा में आपको यही देखना चाहिए कि किस धर्म से शाति मिलती है ? किस धर्म से मेरी और दूसरो की भलाई हो सकती है ? इस प्रकार का विचार करके धर्म को स्वीकार करोगे और उसका अनुगमन करोगे तो धर्म से अवश्य ही शाति प्राप्त होगी । अन्यथा धर्म के लिए सिर फुटौवल होने पर शाति कोसो दूर भाग जाती है ।

१४ : भीष्म की वीरता

सत्यवती के साथ विवाह करके राजा शान्तनु आनन्द-पूर्वक रहने लगे । समय पाकर सत्यवती के उदर से चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्रो का जन्म हुआ । कुछ

असमंजस में पड़ गया कि किसकी बात सही और किसकी गलत समझी जाय ? पहले की बात मानकर वह अपराधी को मुक्त कर ही चुका है। अगर दूसरे की बात सही मानता है तो उसका क्रोध बढता है। स्वय बादशाह अपराधी की भाषा नही समझता और दोनों ही वजीर उसकी दृष्टि मे विश्वासपात्र हैं। अब बादशाह किसका कहना सच मानो और किसका झूठ ?

बादशाह बुद्धिमान् था। उसने दूसरे वजीर से कहा— भले ही पहले वजीर की बात झूठी हो पर वह दया उत्पन्न करने वाली है। और तुम्हारी बात चाहे सच ही हो कि अपराधी मुझे गालियां दे रहा था, तब भी वह क्रोध उत्पन्न करने वाली है। इसकी बात मान कर मैंने अभियुक्त को छोड दिया है। तुम्हारी बात मानूं तो उसे फिर पकडवा कर सजा दूं। अतएव तुम्हारी बात भले ही सच हो, पर मानने योग्य बात इसकी है।

मनुष्य की ज्ञानशक्ति परिमित है। कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य यह दावा नही कर सकता कि वह अभ्रान्त है और उसने कभी कोई भूल नही की। एक बार नही, अनेक बार मनुष्य भ्रम मे पड कर दूसरे को अनुचित दड दे देता है। अपराधी साफ बच जाता है और निरपराध मारा जाता है। चोरी आदि जो भी अपराध किये जाते हैं, वे सब तृष्णा-लोभ के वश होकर ही किये जाते हैं। इसमें आत्मा का दोष नहीं है। लेकिन मनुष्य अपूर्ण है। दंड देने वाले लोग, तृष्णा एव लोभ मे पड़कर अपराध करने वालो को तो दड देते हैं परन्तु यह नही देखते कि अपराधी ने जिन कारणो से

अपने कुल का अपमान सहन नही कर सकते । भीष्म विचार करने लगे—"मेरे रहते कौरव कुल का अपमान हो और मैं चुप बैठा रहूं, यह नही हो सकता । मुझे इस अपमान का प्रतिकार करना चाहिए ।"

भीष्म, सत्यवती के पास पहुचे । सत्यवती को यथोचित प्रणाम करके उन्होने कहा—भाई विचित्रवीर्य विवाह के योग्य हो गया है ।

सत्यवती—जिसने तुम-सा समर्थ भाई पाया है, उसके विवाह की क्या चिन्ता करना है ! जो उचित समझो, करो ।

भीष्म—यह तो ठीक है । लेकिन काशीराज ने अपनी कन्याओ के स्वयंवर का निमन्त्रण नही भेजा ।

सत्यवती—नही भेजा तो न सही । कन्याओ का अकाल थोड़े ही है ।

भीष्म—नही, अकाल नही पडा है, पर यह कौरव कुल का अपमान है । मैं यह अपमान सहन नही करूंगा । मैं विना निमत्रण ही स्वयंवर मे जाऊगा और इस अपमान का आना-पाई समेत बदला लूंगा ।

सत्यवती—आप अकेले होगे और वहां राजाओ का जमघट होगा ।

भीष्म—(हंसकर) आपका पुत्र अकेला ही काफी है । राजा लोग तभी तक अपनी आभा दिखला सकते हैं, जब तक कुरुकुल का सूर्य मौजूद नहीं है । मैं अकेला ही सब की खबर ले सकता हू ।

दिनों के पश्चात शान्तनु ने शरीर त्याग दिया। महात्मा भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चित्रांगद को राज्यासन पर बिठाया और स्वयं राजकाज देखने लगे। चित्रांगद बहुत पराक्रमी राजा हुए परन्तु किसी गधर्व के साथ युद्ध करते हुए परलोक सिधारे। उनकी अंत्येष्टि क्रिया करके भीष्म ने विचित्रवीर्य को राजा बनाया। विचित्रवीर्य भी सुन्दर और शक्तिशाली था। भीष्म पूर्ववत् राज्य का प्रबन्ध करते रहे। विचित्रवीर्य नम्र था और वह भीष्म की आज्ञा का ही अनुसरण करता था।

विचित्रवीर्य राजा हो चुका था, फिर भी उसका विवाह नही हुआ था। आज को तरह उस जमाने में विवाह के लिए जल्दबाजी नही की जाती थी। लड़का कमाने-खाने योग्य हो या न हो, वयस्क हो गया हो, या न हुआ हो, उसे विवाह की आवश्यकता प्रतीत होती हो या नहीं, आजकल के माता–पिता का प्रथम कर्त्तव्य उसे विवाह के बंधन मे जकड़ देना है। यही कारण है कि आज की प्रजा अशक्त होती जाती है।

विचित्रवीर्य को वयस्क और विवाह के योग्य देखकर भीष्म ने उसका विवाह कर देने का विचार किया। उन्ही दिनो काशीनरेश ने अपनी अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नामक तीन कन्याओ का स्वयंवर रचा और सब राजाओ को निमन्त्रण दिया। परन्तु सम्भवत: यह सोचकर कि सत्य-वती धीवर की कन्या है और विचित्रवीर्य उसी का पुत्र है, विचित्रवीर्य को आमन्त्रण नहीं दिया। काशीराज के द्वारा आमंत्रण न मिलना भीष्म ने कुरुवश का अपमान समझा। तेजस्वी पुरुष कठिन से कठिन विपत्ति सह सकते हैं पर

के मारे किसी का साहस न हुआ कि वह रथ को रोकता। भीष्म ने गभीर ध्वनि से गर्जना करते हुए और उपस्थित राजाओ को ललकारते हुए कहा—"मैं कुरुवंशोत्पन्न गंग-कुमार, अपने लिए नही, वरन् अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए इन तीनो कन्याओ का हरण करता हू। जिसमे शक्ति हो, मुझे रोके।"

इतना कहकर भीष्म ने तीनो कन्याओ को रथ मे बैठा लिया। सभी राजा हक्के-बक्के रह गए। किसी को कुछ सूझ ही न पडा कि क्या करें और क्या न करें ?

भीष्म चाहते तो रथ को निर्विघ्न भगा ले जा सकते थे पर उन्होने ऐसा नही किया। भीष्म ने विचार किया—विना युद्ध किये इस प्रकार कन्याओ को ले जाना उचित न होगा। इन्हे चुराकर नही वरन् जीतकर ले जाने मे ही हमारी और हमारे कुल की शोभा होगी। उन्होने सब राजाओ को चुनौती देते हुए कहा—तुम लोग बहुत हो और मैं अकेला हू। मैं तुम सब के सामने इन कन्याओ को विचित्रवीर्य के लिए ले जाता हूं। काशीराज ने विचित्रवीर्य को निमत्रण नही भेजा और इस प्रकार कुरुवश का अपमान किया है। मैं उस अपमान का बदला लेने और कुरुवश की वीरता का परिचय देने के लिए इन कन्याओ का हरण करता हूं। अगर तुममें से किसी मे शक्ति है तो सामने आओ और अपना बल दिखलाओ। अगर तुम जीत जाओ तो इन कन्याओ को ले जाना, अन्यथा मैंने तो अपना पुरुषार्थ बतला ही दिया है।

भीष्म की चुनौती सुनकर कन्याए सोचने लगीं—यह कौन वीर पुरुष है, जिसने हमे रथ मे बिठला कर भी दाव पर

सत्यवती सहमत हो गई। बोली—ऐसी ही इच्छा है तो जाओ। तुम्हारा कल्याण हो।

भीष्म रथ मे सवार होकर अकेले ही काशीराज के यहा जा पहुचे। स्वयवर मडप में जहा अनेक बलवान् और कुलवान् नरेश बैठे थे, भीष्म वही जा धमके। भीष्म को स्वयंवर-मडप में आया देखकर राजा लोग सहम गए। आपस में कानाफूंसी करने लगे। किसी ने कहा—भीष्म बिना निमः ही यहां कैसे आये ? इन्हे आने का अधिकार ही नही है।"

दूसरे ने कहा—आज इनकी कलई खुली है। अभी तक बालब्रह्मचारी कहलाते थे, अब बुढापे मे स्वयंवर की शोभा बढाने आये हैं।

तीसरा कहने लगा—विचित्रवीर्य ने इनका अपमान किया है। सोचते होगे बिना स्त्री के बुढापे मे कौन खोज-खबर लेगा ? इसी से अब बुढ्ढ को विवाह करना सूझा है।

चौथा कुछ समझदार था, वह कहने लगा—मामला क्या है ? भीष्म ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा भङ्ग नही कर सकते। फिर इनके आने का उद्देश्य क्या है ?

इस प्रकार राजा लोग तरह-तरह की कल्पनाएं करने लगे और बडी उत्सुकता एवं बेचैनी के साथ भीष्म की ओर ताकने लगे।

काशी-नरेश की तीनो कन्याएं मण्डप मे घूम रही थी। सब के देखते-देखते अचानक ही भीष्म का रथ स्वयंवर-मण्डप के मध्य मे आ खड़ा हुआ। भीष्म के असाधारण तेज

इस प्रकार विचार कर कई राजा युद्ध से विरत हो गए, परन्तु राजा शाल्व, भीष्म से भीड पडा। उसका कहना था कि हमारे देखते-देखते कन्याओ का अपहरण होना हमारा घोर अपमान है। काशीराज की अम्बा नामक कन्या के साथ शाल्व का मानसिक सम्बन्ध भी स्थापित हो चुका था। इस कारण भी वह शान्त नही रह सकता था। वह भीष्म के साथ युद्ध करने लगा। दोनो का घमासान सग्राम हुआ, मानो हथिनी के लिए दो हाथी आपस में युद्ध कर रहे हों। अन्त मे शाल्व पराजित हो गया। वह निराश होकर अपनी राजधानी को चला गया। अन्य राजागण भी काशीराज की कन्याओ के बदले निराशा और लज्जा का वरण करके अपने-अपने ठिकाने लगे।

युद्ध की भयकरता और अपने भविष्य के अनिश्चय के कारण कन्याएं कांप रही थी। भीष्म ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा—पुत्रियो! घबराओ मत। मैं तुम्हे हस्तिनापुर ले जाऊगा और वहा के राजा विचित्रवीर्य के साथ तुम्हारा विवाह होगा।

पहले तो उन्होने सोचा—न जाने विचित्रवीर्य कैसा राजा है! फिर यह सोचकर कि कुरुकुल का राजा है तो अच्छा ही होगा, सन्तोष धारण किया।

हस्तिनापुर के लिए रवाना होते समय भीष्म ने काशीराज से कहा—तुमने कुरुकुल का जो अपमान किया था, उसका सूद समेत बदला मिल गया या नही? हिम्मत हो तो सामने आओ और अपनी कन्याओ को छुड़ाओ। अन्यथा मैं विजय का शख बजाता हू।

चढ़ा दिया है। यह हमें अपने लिए तो ले नही जा रहा है, जिसके लिए ले जा रहा है, वह कैसा वीर होगा ? इस प्रकार के संकल्प-विकल्प मे पड़ी वह कन्याएं भय से कापने लगी।

भीष्म की ललकार सुनकर अन्य राजाओ का वीर रस भी जाग उठा। वे कहने लगे—तुम भाई के लिए कन्याएं ले जाने की बात कहते हो। अगर यह सच है तो अपने भाई को ही क्यो न भेज दिया ? भाई को भेजते तो हम उसे मजा चखाते। ब्रह्मचारी होकर इस झमेले मे पड़ने की तुम्हे क्या जरूरत थी ? विवाह नही करना था तो इन कन्याओ का स्पर्श ही क्यो किया ? लो, अब करो सामना, देखते हैं तुम्हारी वीरता !

इस प्रकार कहकर राजा लोग एक ही साथ भीष्म पर बाण बरसाने लगे। भीष्म ने सारथी से कहा—मेरे रथ को चक्र की तरह गोल घुमाओ। भीष्म राजाओ के चलाए बाणो को फुर्ती के साथ काटते जाते और समय पाकर बीच-बीच मे प्रहार भी करते जाते थे। उनके शत्रुओ को उनके रथ का अन्दाज ही नही बैठता था कि वह कब किधर आता-जाता है ? सब राजा भीष्म की वीरता और चतुरता देखकर विस्मित हो गए। कहने लगे—बुढ़ापे मे इसका यह हाल है तो जवानी मे यह कितना वीर रहा होगा ! कई आपस मे कहने लगे इस बूढे को पराजित करना ब्रह्मचर्य की शक्ति को पराजित करना है और ऐसा करना सम्भव नही जान पड़ता। इस ब्रह्मचारी से युद्ध छेडकर भूल की है। इसमे ब्रह्मचर्य का अद्भुत बल है। हम नौजवान भी इसका सामना नहीं कर सकते।

पड़ना पड़ा । यद्यपि मैं विचित्रवीर्य के लिए तुम्हें जीत कर लाया हू, फिर भी तुम्हारी स्वतन्त्रता पर आंच नही आने देना चाहता । अतएव मैं तुमसे पूछता हूं—क्या तुम विचित्रवीर्य के साथ विवाह करना चाहती हो ? संकोच और भय का त्याग करके अपने मन की बात स्पष्ट कह देना ।"

क्या भीष्म का इस प्रकार प्रश्न करना उनके लिए अपमानजनक है ? आप तो शायद अपनी निज की लड़की से भी यह प्रश्न करना अपना अपमान समझें ! मगर भीष्म नीतिमान् थे ! नीतिकारों का कथन है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

अर्थात्—जहा स्त्रियों की पूजा होती है, वहा देवता क्रीड़ा करते हैं ।

यहा स्त्रियो की पूजा का अर्थ उन्हे फूल, फल या अक्षत चढाना नही है । किन्तु स्त्री का अपमान न करना—सम्मान करना ही उनकी पूजा है । साधुओ की सेवा करने का अर्थ भी यह नही कि उनके चरणों में फूल चढाए जाएं । किन्तु मर्यादा के अनुसार साधुओं का सम्मान करना ही साधुओं की सेवा है । तात्पर्य यह है कि जहां स्त्रियो की प्रतिष्ठा होती है, उनका सम्मान होता है, वहा दिव्य शक्ति से सम्पन्न पुरुषो का जन्म होता है । अपमानित, लाछित और दासी समझी जाने वाली स्त्रियो की सन्तान उन्ही जैसी होगी ।

यद्यपि भीष्म स्त्रीत्यागी थे फिर भी उनके हृदय में स्त्री-जाति के प्रति आदर का भाव था । वह धर्मात्मा और नीतिज्ञ

काशीराज भीष्म की भयंकरता देख चुका था। वह इस चुनौती से लज्जित हो गया। नीचा सिर करके उसने उत्तर दिया—"मुझ से यह भूल हो गई।"

भीष्म ने कहा—जो हुआ सो हुआ। अब आप विचित्र-वीर्य के स्वसुर हैं और इस कारण मेरे लिए भी पिता के समान पूजनीय हैं।

तीनों कन्याओ को लेकर विजय-शंख बजाते हुए भीष्म काशी से हस्तिनापुर आ गये।

जैन कथा के अनुसार तीनों कन्याएं विचित्रवीर्य को व्याही गई थी। परन्तु महाभारत के अनुसार अम्बा नाम की कन्या का विचित्रवीर्य के साथ विवाह नही हुआ था। अम्बा का विवाह विचित्रवीर्य के साथ क्यो नहीं हुआ, इस सम्बन्ध में महाभारत मे एक उज्ज्वल कथा है। भले ही वह कथा जैन ग्रथो मे अथवा अन्य ग्रन्थों में नही है, लेकिन कथा तो भावदर्शन के लिए होती है, अतएव जैन ग्रन्थो मे अथवा अन्य ग्रन्थो मे न होने पर भी भावदर्शन के लिए उसकी कल्पना की जा सकती है। कथा तो किसी भाव को सिद्ध करने या उसका सक्रिय रूप दिखलाने का ढाचा मात्र है। कथा मे से असली तत्त्व की बात खोज लेनी चाहिए।

भीष्मजी तीनो कन्याओ को तो ले ही आए थे, फिर भी उन्होने विवाह के सम्बन्ध में कन्याओ की स्वीकृति ले लेना अपना कर्त्तव्य समझा। उन्होने कन्याओं से कहा—"पुत्रियो! मुझे इस प्रकार तुम्हें लाने की आवश्यकता नही थी। लेकिन अपने कुल के गौरव की रक्षा के लिए मुझे इस झमेले मे

छिपाती ? मैं हृदय से उन्हे अपना चुकी हूं। यद्यपि राजा विचित्रवीर्य सब प्रकार से सुयोग्य हैं और कुरुकुल भी श्रेष्ठ है, तथापि मैं अपने हृदय को कैसे ठगू ? अतएव मैं हाथ जोड़ कर राजा शाल्व के पास जाने की स्वीकृति चाहती हूं। आपने मुझे पुत्री कहा है। मेरे धर्म की रक्षा का उत्तरदायित्व आपके ऊपर आ गया है। इस जन्म मे उन्हे छोड़कर मेरा दूसरा पति नही हो सकता। आप सच्चे धर्म-निष्ठ क्षत्रिय हैं, इसलिए मेरे धर्म की रक्षा कीजिए।

यदि भीष्म भी आज के लोगो की तरह होते तो अम्बा की बात कौन सुनता ? जिस अम्बा को भीष्म इतनी कठिनाई से लाये, विशेषत: जिसके लिए ही शाल्व ने युद्ध किया था। और भीष्म के प्राण संकट में पड गए थे, क्या उसी जीती हुई अम्बा को भीष्म शाल्व के पास चली जाने दें ? भीष्म कह सकते थे—मैं तुम्हे युद्ध मे जीतकर लाया हू और तुम्हे विचित्रवीर्य के साथ विवाह करना पड़ेगा। पर भीष्म अन्याय करने वाले नही थे। अम्बा की स्पष्ट उक्ति सुनकर उन्हे प्रसन्नता हुई। उन्होने सान्त्वना देते हुए कहा—"राजकुमारी, मैं तुम्हारे धर्मपालन मे बाधा नही डालना चाहता। तुम प्रेमबन्धन में बंधी हो, मैं उसे तोड़ना नहीं चाहता। अगर मैं किसी वृक्ष को जल न दे सकूं तो उसे काटना भी मेरा काम नही है। मैं सतप्त को शाति पहुंचाना चाहता हूं, दुःखी का दुःख मिटाना चाहता हू और परोपकार मे ही अपना जीवन लगाना चाहता हूं।"

भीष्म विचारने लगे—"जिसे लोग अबला कहते हैं, उस में भी धर्मपालन की प्रबल इच्छा रहती है। यद्यपि

थे। इसी कारण उन्होंने लाई हुई कन्याओं से विवाह के विषय में प्रश्न किया और उनकी सम्मति मांगी।

भीष्म के प्रश्न के उत्तर में अंबिका और अंबालिका ने कहा—"हम स्त्री हैं। आखिर हमे अपना हृदय किसी को सोपना ही हैं। हमारा सौभाग्य है कि कुरुवंशी राजा हमारे पति होंगे और आप जैसे परम त्यागी जेठ की सेवा करने का अवसर मिलेगा।"

इस प्रकार दोनों ने विचित्रवीर्य को पति बनाना स्वीकार कर लिया, परन्तु अम्बा के हृदय में दूसरे ही भाव उठ रहे थे। वह नीचा सिर किये चुपचाप बैठी रही। तब भीष्म ने उससे पूछा—राजकुमारी, तुम्हारी क्या इच्छा है?

अम्बा ने कहा—जिस प्रकार आप अपने धर्म का पालन करना चाहते हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने धर्म का पालन करना चाहती हूं।

भीष्म—ठीक है। तुम अपना धर्म पालने के लिए स्वतन्त्र हो पर यह तो बतलाओ कि किस प्रकार अपने धर्म का पालन करना चाहती हो? क्या चाहती हो?

अम्बा—राजा शाल्व ने मेरे पिता से मेरी याचना की थी और पिता ने उन्हें स्वयवर के समय का आश्वासन दिया था। वे स्वयवर में आये और मैंने उन्हें देखकर मन ही मन वरण कर लिया। मेरा विवाह उन्हीं के साथ होता पर आप मुझे पकड़ लाये। युद्ध की उस गड़बड़ में मैं कुछ कह न सकी और भय की मारी आपके साथ चली आई। जब आप धर्म की रक्षा चाहते हैं तो मैं यह बात कैसे

करके लाये हैं । फिर भी विवाह के सम्बन्ध में उनकी स्वीकृति ले रहे हैं । वे सोचते हैं कि किसी को दुःखी करना धर्म नही है ।

भीष्म ने अम्बा से कहा—बेटी, तुम ठीक कहती हो । यद्यपि शाल्व के साथ मेरा युद्ध हो चुका है, पर वह उसी समय के लिए था । शाल्व के पास तुम्हे भेज देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।

भीष्म ने सारथी को बुलाकर कहा—"राजकुमारी अंबा को शाल्व के पास सुरक्षित पहुचा दो और लौटकर मुझे सूचना देना । अगर शाल्व कुछ कहे तो उसे चुपचाप सुन लेना । दूसरे को अपना हृदय दे चुकने वाली कन्या को हाथ लगाने का मुझे कोई अधिकार नही था ।"

शिवाजी के सैनिक किसी सरदार की सुन्दर स्त्री को उनके पास ले आये । सैनिको ने समझा—स्त्री सुन्दर है, इसे पाकर हमारे स्वामी प्रसन्न होगे और हमे अच्छा इनाम मिलेगा । उस समय शिवाजी किसी पहाडी गुफा मे थे और युद्ध से छुटी पाकर अपने इष्ट का ध्यान कर रहे थे । सैनिक उस स्त्री को लेकर गुफा की ओर ही गये । शिवाजी जब गुफा से बाहर निकले तो उस स्त्री को देखते ही सैनिको से पूछा—इस माता को यहा क्यो लाये हो ? भय से कापती हुई उस स्त्री से उन्होने कहा—आप यहां किसलिए आई है, माता ?

स्त्री अभी तक काप रही थी । भय के मारे उसके प्राण सूख रहे थे । पर शिवाजी के मुख से "माता" संबोधन सुन कर वह सोचने लगी—शिवाजी महाराज जब मेरे पुत्र बन गए हैं तो अब भय की क्या बात रह गई है !

विचित्रवीर्य की तुलना मे शाल्व सौन्दर्य की दृष्टि से भी तुच्छ है और बल–वैभव के लिहाज से भी, परन्तु इस कन्या को धन्य है। जो इन कारणो से अपने हृदय को नही ठगना चाहती। इसके हृदय का अपमान करना धर्म का अपमान करना है। जब मैंने शिवदास धीवर का भी अपमान नही किया तो यह तो राजकन्या है और कहती हैं कि मैं तो अपना हृदय शाल्व को समर्पित कर चुकी हूं। ऐसी दशा मे इसके प्रेम और प्रण को भङ्ग करके मैं उस धर्म की जड़ कदापि नही काट सकता, जिसे मैं कल्पवृक्ष के समान समझता हू।

आज कन्या का विवाह वर के साथ किया जाता है या कचन के साथ ? बारह वर्ष की कन्या किसी अयोग्य और विचारशून्य बूढे के गले मढ दी जाती है, सो क्या कन्या की स्वीकृति से ? क्या यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि कन्या उस बूढे को पसन्द करती है या नही ? कुछ लोगो का विचार तो यहा तक सुना जाता है कि लड़की विधवा हो जाएगी तो क्या बुरा है—ब्रह्मचर्य पालेगी ! यह विचार नीति और धर्म से कितना गिरा हुआ है ! बलात् संयम पल–वाना और किसी के अधिकार को लूट लेना श्रावक का कर्त्तव्य नही है। जो स्वय तो बुढ़ापे मे भी नयी दुलहिन लाने से नही चुकता और लड़की को विधवा बनाकर ब्रह्मचर्य पलवाना चाहता है, उसके लिए क्या कहा जाए ! यह धर्म नही, धर्म की विडम्बना है। स्वार्थी लोग ऐसे कृत्य करके धर्म को लजाते है।

इधर भीष्म को देखो। वे दूसरे की कन्याएं हरण

क्या आपको विदित नही है कि भीष्म ब्रह्मचारी हैं।

शाल्व—ब्रह्मचारी रहा होगा तब रहा होगा, अब वह ब्रह्मचारी नहीं है। स्वयवर में आया और ब्रह्मचर्य नष्ट हुआ। फिर भले ही वह ब्रह्मचारी हो, तुम मेरे काम की नही हो।

अम्बा—आप भूल कर रहे हैं महाराज ! भीष्म ने अपनी स्त्री बनाने के लिए हमारा हरण नही किया था, किन्तु कुल का अपमान हटाने के लिए, अपनी शक्ति दिखाने के लिए और अपने भाई का विवाह करने के लिए ही हम तीनों बहिनो का अपहरण किया था।

शाल्व—अपने लिए न सही, भाई के लिए ही सही। तुम भीष्म की नही तो विचित्रवीर्य की हो चुकी। उसकी परित्यक्ता स्त्री को मैं अपनी पत्नी किस प्रकार बना सकता हू ? मैं ऐसे नीच कुल का नही हू।

अम्बा-अबला को इस प्रकार दुत्कारना उचित नहीं है। यद्यपि मेरा यह अपराध है कि मैं भीष्म के रथ में बैठ गई और मैंने प्राण नही त्याग दिये, लेकिन हस्तिनापुर पहुच-कर भी मैंने आपके सिवाय दूसरे पुरुष का चिन्तन नही किया है। यद्यपि विचित्रवीर्य का वैभव आपसे कम नहीं है, पर मैं आपके सिवाय दूसरे को नही चाहती थी। मैं आप पर ही अनुरक्त थी। इसलिए आप मुझे अपने यही स्थान दें। मेरा तिरस्कार न करें। मैं हस्तिनापुर से चली आई हूं। अब वहा लौटकर कैसे जा सकती हूं ? और पिता के घर जाने का मुझे अधिकार ही क्या है ? आप मुझे जिस तरह रखेंगे, रहूंगी। जो देंगे वही खाऊगी। पर मरा

शिवाजी ने अन्त में कहा—पालकी मे बिठला कर इन्हें अपने पति के पास पहुंचा आओ। कदाचित् इनके पति कोई बात कहें भी तो सुन लेना, क्योंकि तुमने अपराध किया है। ध्यान रखना, इस माता को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

भीष्म ने अपने सारथी से भी यही कहा। भीष्म के निर्णय से सारथी और वहां उपस्थित दूसरे लोगो को अत्यन्त हर्ष हुआ। सब ने भीष्म की सराहना की और मन में उन्हें प्रणाम किया।

सारथी अम्बा को शाल्व के पास ले गया। उसने शाल्व से कहा—"यह राजकुमारी आपको चाहती है, इस कारण महाराज भीष्म ने इन्हे आपके पास भेजा है।"

अम्बा सिर नीचा किये कहने लगी—"मैं हृदय से आपका वरण कर चुकी हू, अतः आप मुझे स्वीकार करने का अनुग्रह कीजिए। मैं जबर्दस्ती पकड़ी गई थी और रथ में मूर्छित हो गई थी। इस कारण युद्ध के समय कुछ बोल न सकी। मेरा अपराध क्षमा करिये और मुझे स्वीकार कीजिए।"

शाल्व अकड़ने लगा। बोला—भीष्म द्वारा त्यागी हुई स्त्री को कैसे स्वीकार कर सकता हूं? संसार मुझे क्या कहेगा? जिसका हाथ पकड कर भीष्म ने रथ में बिठला लिया और जिसे अपने घर ले गया, वह स्त्री मेरे लिए त्याज्य है। भीष्म सरीखे बहादुर को छोड़कर तुम यहां आई ही क्यो?

अम्बा—मैं आपका वरण पहले ही कर चूकी थी, इस-लिए भीष्म को पति नहीं बना सकती थी। इसके अतिरिक्त

जवाहर-साहित्य

तिरस्कार न कीजिए ।

शाल्व—तुम्हारा कहना अनुचित नहीं है देवी अ..
खाने पीने की मेरे यहां कमी भी नही है । लेकिन तुम्हें
रखने से मेरा अपमान होगा । मैं अपमान नहीं सह सकता
और इसी कारण तुम्हें रखने मे असमर्थ हू ।

शाल्व का उत्तर सुनकर अम्बा घबरा उठी । वह सोचने
लगी—अब मैं क्या करूं और कहां जाऊ ? मेरे लिए अब कोई
उपाय नही है । केवल एक ही चारा है कि मैं क्षत्रियो का मद
उतारने वाले परशुराम की शरण मे जाऊं और उनसे प्रार्थना
करूं । वही किसी को समझाएगे । उनमे भीष्म को भी सम
झाने की शक्ति है और शाल्व को भी वे समझा सकते है ।

अन्त मे अम्बा परशुराम के पास पहुची । उसने सारा
वृत्तान्त सुनाया । परशुराम ने कहा—शाल्व अयोग्य और
मिथ्याभिमानी है । वह मेरे योग्य वीर नही है । मैं उससे तो
कुछ नही कह सकता, लेकिन तेरा विवाह भीष्म से कराऊंगा ।

अम्बा—लेकिन भीष्म तो बालब्रह्मचारी हैं ।

परशुराम—इसके लिए चिन्ता मत कर । तुझे हाथ
लगाते ही भीष्म का ब्रह्मचर्य चला गया । उसमे ऐसी शक्ति
नही कि मेरे कहने पर भी तेरे साथ विवाह न करे । कौन
ऐसा क्षत्रिय है जो मेरे आदेश की अवज्ञा करने का साहस करे?

परशुराम ने अम्बा का पक्ष लेकर भीष्म के साथ उसका
विवाह कराने का प्रण किया है और भीष्म ब्रह्मचारी रहने का
प्रण कर चुके है । अब देखना चाहिए, किसका प्रण पूरा
होता है ? मगर इस कथा को हम यहीं समाप्त कर देते हैं ।

